साहित्यकार बदरी नारायण सिनहा

★

(कृतित्व विश्लेषण)

★

सम्पादक

गोस्वामी मदन गोपाल "अरविन्द"

नृपेन्द्रनाथ गुप्त एम० ए०

प्राथमिकी की एक प्रति मिली। धन्यवाद, मेरे सम्बन्ध में आपके उद्गार, व्यक्त की गयी भावनाओं को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

—श्री अज्ञेय

समास शैली में विवेच्य विषयों का मार्मिक और वस्तुपरक मूल्यांकन किया गया है। पुलिस अधिकारी रहते हुए भी लेखक के अन्दर जो साहित्य के प्रति ऐसी निष्ठा है, इसके लिए वह प्रशंसा के पात्र है।

—श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु

प्राथमिकी पुस्तक मिली। कृतज्ञ हूँ। बहुत जगह अपने मन पसन्द मत देखकर प्रसन्नता हुई। भाषा के संबन्ध में आपकी धारणाएं बहुत अच्छी लगीं।

—डा० श्री रामविलास शर्मा

आपकी सभी रचनाएं मुझे बड़ी प्रिय है।

—श्री 'द्विजेन्द्र'

आलोचना की दिव्य शक्ति लेकर नया हस्ताक्षर प्रगट हुआ।

—श्री प्रभात

साहित्यकार बदरी नारायण सिनहा

(कृतित्व विश्लेषण)

Coll 9840.

सम्पादक

गोस्वामी मदन गोपाल "अरविन्द"

नृपेन्द्रनाथ गुप्त एम० ए०

प्रकाशक

भगवती प्रसाद अग्रवाल

विक्रमशिला साहित्य सम्मेलन

कहलगांव (भागलपुर)

दिनांक ७ मई १९६६

मूल्य : २ रुपये

आभार : उधार

आपलोग मेरे कृतित्व का विश्लेषण पुस्तिका कर रहे हैं, यह जानकर मैं कृतज्ञ होने के बदले आत्म-परीक्षक हो गया हूँ।

साहित्य में मैं क्यों उतरा?

कीर्ति के लिए? पर कीर्ति तो मृगतृष्णा होती है जो कुछ दूर किसी सजलभूमि में भले ठहर जाये परन्तु जो दरअसल विशाल महरूमि, अकीर्ति, गह, अकर्मण्यता की महाभूमि में सूख जाती है। इसलिये, कीर्ति के कारण नहीं।

तो, धन-ऐश्वर्य के हेतु? यह मेरी उसूलों के आदान और प्रकाशन के इतिहास को जानकर भूल क्या आज भी नहीं ठहरे।

हिन्दी भाषा और साहित्य के बल को लोगों, जाने, अनजाने लोगों के समक्ष जताने के लिये और आत्म जीवन की साधना, चेतना को उनके बीच बाँटने के लिये ही मैं साहित्य में उतरा हूँ।

आपका प्रकाशन मेरे हौसले को बुलन्द करेगा।

— [illegible]

२८.३.९६

श्री सिनहा की कृतियाँ

१. प्राथमिकी .... आलोचना
२. माध्यमिकी.... ... ... आलोचना (अप्रकाशित)
३. आज-तक की ... ... ,, ,, ,,
४. मैना के उलझ गये डैना... .... उपन्यास-सहारी
५. झांकियां ... ... उपन्यास
६. अब बहुसे सब जन हिताय .... काव्य
७. प्रतिनिधि गद्य ... ... गद्य

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक श्री बदरी नारायण सिनहा के कृतित्व की समस्त विधाओं का एक निष्पक्ष विश्लेषण किया गया है। आरक्षी अधीक्षक के महत्वपूर्ण पद को योग्यतापूर्वक संभालते हुए श्री सिनहा ने जो साहित्य सेवा की है, वह हमें ब्रिटिश जमाने के आई० सी० एस० और आई० ऐ० पदाधिकारियों का स्मरण दिलाती है। अखिल भारतीय आरक्षी सेवा, विगत एवं वर्त्तमान, के अन्तर्गत बदरी बाबू प्रथम सदस्य साहित्य के अन्वेषी और रचनाकार के रूप में हैं, यह बात विलक्षण और असाधारण अपने आप में है। आज का अधिकारी और नेता अपनी गरिमा और वर्ग जय-जयकार चाहता है किन्तु बदले में उसके पास समाज को देने को कुछ नहीं रहता हैं। इसका परिणाम यही होता है कि जब तक शासन रूपी दंड उनके हाथ रहता है, तब तक सामाजिक प्रतिष्ठा अपने चरम उत्कर्ष पर रहती है; ज्योंही उसके हाथ से शासन की बागडोर चली जाती है, बस वे नियंता के हाथ की कठपुतली भर रह जाते हैं। बदरी बाबू उन अधिकारियों की परम्परा से बिल्कुल विपरीत एक ऐसी धारा पर चल रहे हैं जो उनके व्यक्तित्व को उनकी अफसरी समाप्त करने के बाद समाज में उन्हें प्रतिष्ठित और जीवित रखेगी।

हमने बदरी बाबू के व्यक्तित्व के गुणगान करने की अपेक्षा उनके कृतित्व की समीक्षा करनी ही साहित्य के लिए कल्याणकारी मानी। वे एक साथ आलोचक, कवि, कथाकार और गद्यकार हैं। उनकी दृष्टि इतनी

पैनी है कि समाज का कोई अंग अछूता नहीं बच पाता है। अपनी कलम से समाज के सड़े गले अङ्गों पर बड़ी तीव्रता से प्रहार करते हैं यहाँ तक कि स्वयं अपने आप को भी नहीं छोड़ते। फलस्वरूप उनके मित्रों की कमी नहीं, तो पीठ पीछे शिकायत करनेवाले भी कम नहीं। सरकारी पदाधिकारियों को शिकायत है कि साहित्य के पीछे अपनी मर्यादा और अफसरी मनोवृत्ति का पालन नहीं कर पा रहे हैं तो साहित्य के मठाधीशों को शिकायत है कि वे साहित्य में नाहक पैर अड़ा रहे हैं। उनमें साहित्यिक कबीर का अक्खड़ बड़प्पन है तो मीरा की तरह कुल मर्यादा की चिन्ता किए बिना साहित्यिक दीवानापन। वे ही अधिकारी उनके साथ घुल मिल पाते हैं जिन्होंने अपने को जनतांत्रिक बना लिया है और वे ही साहित्यिक उनके साथ चल पाते हैं, जिन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में उनके साहित्य के साथ पूरा-पूरा न्याय हुआ है, मैं ऐसा दावा तो नहीं करता किन्तु मैं इतना अवश्य ही कहने की अनुमति चाहता हूँ कि उनके कृतित्व की एक निष्पक्ष आलोचना सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में देखने को मिलेगी। डा० बेचन, श्री तेजनारायण कुशवाहा, और गिरिजा गुप्त को मैं धन्यबाद देकर कृतज्ञता का बोझ हल्का नहीं करना चाहता। सबों ने अपनी विद्वत्ता और योग्यता का भरपूर परिचय दिया है, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। श्री अरविन्द का विशेष रूप से इसलिए कृतज्ञ हूँ कि इस पुस्तक के सम्पादन में—अपना बहुमूल्य समय देकर मेरे कार्यभार को हल्का बनाया है।

अपने मित्र, सहयोगी श्री कृष्ण गोपाल वर्मा को मैं अनेक धन्यवाद देता हूं जिन्होंने लेखक-संबंधी बहुत सी सामग्रियां दीं।

प्रकाशक मित्र श्री भगवती प्रसाद अग्रवाल ने पुस्तक प्रकाशन में बहुत ही महत्वपूर्ण सहयोग दिया, अतः उन्हे भी सम्पादक की हैसियत से धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हुं।

"बदरी नारायण सिन्हा: कृतित्व विश्लेषण" के प्रकाशन के लिए जल्दी-बाजी के कारण इस पुस्तक में कतिपय त्रुटियाँ रह गयी हैं, और विस्तार से लेखक की कृतियों और विधाओं का मूल्यांकन नहीं हो सका है। इसके लिए यदि प्रबुद्ध पाठक से क्षमायाचना नहीं करें तो यह हमारी धृष्टता होगी।

विक्रमशिला साहित्य सम्मेलन के अवसर पर श्री सिनहा की मंगल कामना करते हुए लेखक को परिषद का ओर से मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

नृपेन्द्र नाथ गुप्त, एम० ए०
सम्पादक एवं संयोजक
विक्रमशिला साहित्य परिषद
कहलगाँव, भागलपुर

निबन्धक निवास
कहलगाँव (भागलपुर)

डा० श्री लक्ष्मी नारायण सिंह "सुधांशु"

को

विक्रमशिला साहित्य सम्मेलन

कहलगाँव की ओर से

सादर समर्पित

— सम्पादक

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

	विषय	पेज
१	प्राथमिकी : एक विश्लेषण	१
२	प्राथमिकी एक उल्लेखनीय कृति	६
३	बदरी नारायण सिनहा	१०
४	प्राथमिकी—ले० बदरी नारायण सिनहा ...	१७
५	प्राथमिकी (आलोचना में एक नई दिशा) ...	२०
६	प्राथमिकी	२६
७	प्राथमिकी एक मौलिक सर्वाङ्गीण रचना...	२९
८	प्राथमिकी	३०
९	प्राथमिकी	३२
१०	प्राथमिकी	३६
११	प्राथमिकी	३८

द्वितीय खण्ड

१	मैना के उलझ गये डैना और चार कहानियाँ ...	१
२	मैना के उलझ गये डैना ...	६

	विषय		पेज
३	मैना के उलझ गये डैना	...	१२
४	मैना के उलझ गये डैना	...	१५
५	मैना के उलझ गये डैना	...	२३
६	मैना के उलझगये डैना	...	२५
७	झांकियां एक विश्लेषण	....	२६

तृतीय खण्ड

१	अब बहु से सब जन हिताय	...	१
२	अब बहु से सब जन हिताय एक उल्लेख्य कृति	...	१२

चतुर्थ खण्ड

१	श्री सिनहा के गद्य का मानदंड	...	१
२	गद्यकार श्री बदरी नारायण सिनहा	...	५
३	हिन्दी-हिन्दवी के सजग प्रहरी	...	८
४	श्री बदरी नारायण सिनहा एक विचारक तथा प्रचारक	...	१२

पंचम खण्ड

१	श्री बदरी नारायण सिनहा व्यक्तित्व	....	१
२	श्रीमति इन्दु सिनहा	...	५

प्रथम खण्ड

आलोचना

प्राथमिकी : एक विश्लेषण

—तेज नारायण कुशवाहा, एम० ए०,

श्री बदरीनारायण सिनहा की 'प्राथमिकी' हिन्दी-साहित्य के सात वर्षों —सन् १९४४ से २६ जनवरी, १९५० तक की हलचलों और गति विधियों का एक तटस्थ अध्ययन है।

यह तीन खण्डों में विभक्त है: खण्ड—एक, खण्ड—दो और खण्ड—तीन। जहाँ खण्ड—एक को 'प्राथमिकी', 'उत्तरा', 'नवीन', 'संवर्त्त', कुरुक्षेत्र', 'नये पत्ते', 'इत्यलम'॥ 'ये उपान्यास' और 'कहानियां' शीर्षक सामग्रियाँ विभूषित करतीं हैं, वहाँ खण्ड दो को 'हमारे नाटक', 'गद्य और समीक्षा' तथा खण्ड तीन को 'सामयिक चर्चा'—नवीन कवियों की प्रवृत्ति, हिन्दी की अतुकान्त कविता, कवि : एक उपदेशक, हिन्दी का ग्रामोन्मुखी साहित्य एवं आधुनिक हिन्दी कहानियाँ।

खण्ड तीन की विषय—विभाजन—पगडंडी, पगडंडी होकर भी—ऋजु है और संतुलित भी। खण्ड एक और दो का विषय विभाजन अवैज्ञानिक है।

'प्राथमिकी' का पहला निबन्ध इसी नाम का 'प्राथमिकी' की महत्व पूर्ण भूमिका है—हिन्दी-साहित्य से सम्बन्धित और समस्त तथ्यों के विवेचन से संवलित।

दूसरे निबन्ध में नियोजित अवधि के मुख्य काव्य-प्रकाशनों—'उत्तरा'; 'नवीन', 'संवर्त्त', 'कुरुक्षेत्र', 'नये पत्ते' और इत्यलम्'—का सम्यक् अनुशीलन गम्भीर अध्ययन एवं चिन्तन के उपरान्त किया गया है। और तो और

'संवर्त्त' में लेखक आराधना मुख नहीं, अध्ययन मुख है, इसलिए इनमें जो सौन्दर्य मुखर है, वह किसी में शायद।

'उपन्यास' में लॉरेंस एवं ज्वॉस की प्रतिनिधि उपन्यास-कृतियों की पृष्ठ-भूमि में 'शेखर : एक जीवनी' और घेरे के बाहर' की परख पाश्चात्य के प्रति लेखक का पुराना मोह-प्रदर्शित करती है। परंतु लेखक ने बड़ी कुशलता से इस तथ्य को रखा है कि 'शेखर : एक जीवणी' 'संन्यासी' तथा 'प्रेत और छाया' में एक ही प्रकार की कथावस्तु है। 'शेखर : एक जीवनी', 'प्रेत और छाया' और 'गुनाहों का देवता' का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन भारी भरकम और समीचीन है। इन तीनों कृतियों के स्वत्व ढूढ़ने में लेखक सफल हुआ है। 'वैशाली की नगर बधू' एवं 'गिरती दीवारें, की समीक्षा 'कुछ और' का कुतूहल उत्पन करती है। 'रतिनाथ की चाची को पहली बार यहाँ विस्तार मिला है। 'दिव्या', 'नूरजहाँ' और 'झाँसी की रानी' के प्रति लेखक की कोई अभिरुचि नहीं दीख पड़ती है।

'कहानियाँ' में सर्वप्रथम कहानी और उपन्यास का स्मरणीय अन्तर दिखलाया गया है और बाकी पृष्ठों में **'त्रिवेणी'** 'पाजेब' (जैनेन्द्र कुमार) 'रोज' (अज्ञेय), 'मेघ मल्हार, (उषादेवी मित्रा), 'संघर्ष', गर्जन' (भगवत शरण उपाध्याय) 'शेषनाग की थाती' (पहाड़ी), अभिशप्त', 'ज्ञानदान', तर्क का तूफान' (यशपाल), 'बुत जागते हैं' (अनूदित—कृष्णचन्द्र) और जीवन का सत्य' (मोहनसिंह सेंगर) की परख की गई है। यहाँ लेखक ने **'त्रिवेणी'** में असंदिग्ध रूप में हिन्दी कहानी का नव अभ्युदय हुआ' स्वीकार किया है।

'नाटक' निबन्ध में 'अम्बपाली' (बेनीपुरी) ; कैद' और' उड़ान' (अश्क), 'राम से गांधी' (सेठ गोविन्द दास), 'लोहा सिंह' (रामेश्वर सिंह काश्यप), 'राखी की लाज' (वृन्दालाल वर्मा), 'नारद की वीणा' (लक्ष्मी नारायण मिश्र) और समस्याओं का अन्त' (उदय शंकर भट्ट) की

निर्भीक एवं स्पष्ट आलोचना की गई है। 'लोहा सिंह' को नमूना-नाटक की कोटि में रखना लेखक की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है, ऐसे तो आलोच्य पुस्तक में उसका प्रवेश-निषेध होना चाहिए था।

'गद्य' शीर्षक ऐसे भ्रामक है। इसके अन्तर्गत निबन्ध, जीवनी, आत्म-कथा, संस्मरण, लेख, सम्पादकीय, वक्तव्य और विषयवार्ता की विवेचना हुई है। उपन्यास, कहानी, नाटक और समीक्षा गद्य से अलग कर दिया गया।

'समीक्षा' में 'दृष्टिकोण', 'हिन्दी-साहित्यः बीसवीं शताब्दी', "काव्य में अभिव्यञ्जनावाद', 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त', पर तो समर्थ दृष्टि डाली ही गई है, समीक्षा और समीक्षक को लक्षण और स्वरूप का भी विशद विवेचन हुआ है। समीक्षा पर निरूपित लक्षण बहुत हद तक ग्राह्य है।

सामयिक चर्चा' श्री सिनहा के विचारों का सुन्दर समुच्चय है; हो सकता है उन विचारों से लेखक पाठक और आलोचक के विचार मेल न खाएँ।

साहित्यिक उपलब्धियाँ—गीति-काव्य, इतिहास, कोष आदि—यदि अछूती न रहतीं तो प्रस्तुत कृति और भी सुन्दर और उपादेय होती।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक की निरपेक्ष दृष्टि उन उपेक्षित पक्षों पर गई है, जिसकी अपेक्षा प्रबुद्ध पाठकों और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य को रही है। यदि कृतिकारों के वृत्त तथा सामूहिक रूप में आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों की विस्तृत भूमिका पर श्री सिनहा उतर आते तो वह पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो ऐसा संयमित अध्ययन और अनुशीलन प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते तथा हम उनकी विचार-भूमि से अपरिचित रह जाते।

आज सर्वत्र हिन्दी आलोचना में निन्दात्मक या प्रशंसात्मक निबन्धों की बाढ़ सी आ गई है। रचनाकारों एवं उनकी रचनाओं का तटस्थ अध्ययन शायद कोई प्रस्तुत करता है। फलतः समीक्षा शिथिल पड़ती जा रही है।

यदि दिल्ली, आगरा, प्रयाग वाराणसी आदि महानगरियों से आलोचना मुक्त होकर छोटे-छोटे नगरों, कस्बों, गाँवों और प्रान्तरों में आए तो सम्भव है उसमें पुनः स्फूर्ति आ जाय और नयी सम्भावनाओं की उद्भावनाओं को प्रकाश मिले। 'प्राथमिकी' के लेखक द्वारा उद्धार का यह अनुष्ठान हुआ है। इसलिए उसकी आलोचना ने गम्भीर समीक्षा का रूप धारण किया है। मेरे विचार से रूढ़ि से घिरे पूर्व संस्कारों से आलोचना पहली बार यहाँ मुक्त हुई है। 'प्राथमिकी' सत्समालोचना की दोआब भूमि है, जहाँ आलोच्य साहित्यकार एवं उनके साहित्य को स्वतः जीवन मिला है।

निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक, आलोचना-पहाड़ी के ये दो मुख्य सोते हैं। प्रथम में सैद्धान्तिक समीक्षा-प्रवाह अन्तर्भूत है और उससे ही आलोच्य कृति का सम्बन्ध भी। यही कारण है कि ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक समीक्षा दूर पड़ गई है। पड़ेगी ही। इनका सम्बन्ध जो व्याख्यात्मक सोते से ठहरा, जिसे अपेक्षा रहती है विस्तृत राजनीतिक, सामाजिक एवं साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि की

'प्राथमिकी' का लेखक, लगता है, कोई रेडियो वार्त्ताकार हो और एक-एक निबन्ध मानो रेडियो वार्त्ता। सम्भवतः शब्द और समय की सीमा ने उसे ऐसा कहा। फल अच्छा मिला—संतुलित सागर का गाम्भीर्य। वह साहित्यकारों के मन के समीप है, इसलिए वैसी पृष्ठभूमि से अवगत और निसर्गतः नाना प्रकार की चिन्ताओं, प्रश्नों एवं सन्देहों से आवृत्त भी। अतः यह कृति आत्मीय निर्देशिका बन गई है।

प्राथमिकी [illegible] एक ऐसा राजकीय वन है, जिसमें बड़े रूप-आकार के वृक्ष लगे हैं। सेवन में सुविधा का ख्याल रखा गया है। स्वतः उगनेवाले पौधे—लता-गुल्म, तृणादि सोह दिए गए हैं। फिर भी प्राकृत निखार के अभाव में वन की स्वच्छता सराहनीय है।

'प्राथमिकी' 'अरोचक नहीं, 'सतृणव्यवहारी' नहीं 'मत्सरी' नहीं,

'तत्वाभिनिवेशी समीक्षक की सृष्टि है, जिसमें समालोचना के सार्वदेशिक, सर्वकालीन, स्थायी एवं वैज्ञानिक रूप- स्वरूप आकृत हैं।

'प्राथमिकी' के लेखक की अपनी शैली है, जो प्रभावपूर्ण रोचक और समीक्षा के अनुरूप है। वाक्य प्रायः छोटे और बोधगम्य हैं। भाषा शुद्ध सरल और के स्वाभाविक है। वाक्य में परिगणित विशेषणों, संज्ञाओं आदि के अन्तिम पद के पूर्व स्थान विशेष पर संयोजक अव्यय 'और', 'तथा' आदि का अप्रयोग मुझे तो भाता है।

इस ग्रन्थ के पढ़ने पर लेखक के विस्तृत अध्ययन का पता चलता है। विविध विधाओं की उपलब्धियों, अभावों एवं सम्भावनाओं के विवेचन से पुस्तक की महत्ता बढ़ गई है।

'प्राथमिकी' मननीय कृति है और नमनीय भी। ऐसी उत्तम कृति के लिए हम लेखक और प्रकाशक दोनों का अभिनन्दन करते है। तब ही तो सम्पूर्ण देश में विद्वानों ने इसका स्वागत किया है।

—अङ्ग प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन,

—ईशीपुर, (भागलपुर)

'प्राथमिकी' एक उल्लेखनीय कृति

—प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्रा

'प्राथमिकी' एक ऐसे लेखक की कृति है जिनका आविर्भाव हिन्दी साहित्य समीक्षा क्षेत्र में एक आनन्दप्रद विस्मय के रूप में समझा जायगा। ख्यातिविशिष्ट लेखकन होने पर भी उन्होंने प्राथमिकी में समकालीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन जिस तटस्थता एवं निरपेक्षता के साथ प्रस्तुत किया है वह अवश्य ही उनकी मननशीलता एवं साहित्य रसविदग्धता का परिचायक है। १९४४ से १९६४ ई० तक की कालावधि में हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में जो उल्लेखनीय कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं और साहित्य की विभिन्न विद्याओं में जो सब प्रयोग हुए हैं उनका गहन अध्ययन अनुशीलन करने के पश्चात् लेखक ने हिन्दी के सुधी पाठकों के सामने उनको एक आलोचनात्मक मूल्यांकन उपस्थित करने का प्रयास किया है। उसी प्रयास के फलस्वरूप 'प्राथमिकी' का प्रकाश न हुआ है। इसकी आगामी पूरक रचनाएँ होगी 'माध्यमिकी' जिसमें १९५० से १९६० और 'आज तक की' जिसमें १९६१ से १९६५ ई० तक की साहित्यिक गतिविधियों एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन रहेगा।

लेखक का छात्र जीवन गौरवोज्वल रहा है। अंग्रेजी साहित्य के वे एक कृती विद्यार्थी रहे हैं। इस समय पुलिस विभाग के एक उच्च पदाधिकारी हैं। फिर भी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रति उनके हृदय में गम्भीर आस्था एवं निष्ठा का भाव है। बड़ी ही सहृदयता एवं आन्तरिकता के साथ उन्होंने गत बीस वर्षों की साहित्यिक गतिविधियों का पर्यवेक्षण किया है और उनके सम्बन्ध में स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। यह देख कर आश्चर्य होता है कि अंग्रेजी साहित्य के विद्वान होने पर भी

लेखक ने हिन्दी साहित्य की किसी विद्या या कृति की परीक्षा-निरीक्षा विदेशी मानदण्ड से नहीं की है। अपने मतों और धारणाओं के प्रतिपादन में उन्होंने सारी पुस्तक में एक भी विदेशी साहित्य का उद्धरण नहीं दिया है। विदेशी साहित्य समालोचना ग्रन्थों को पढ़ कर उन्होंने अपना मत निर्धारण नहीं किया है। सर्वत्र स्वतंत्रचिन्तन एवं निजस्व विचार बुद्धि से काम लिया है। साहित्य समालोचना के लिए अभिज्ञता, अनुसन्धित्सा एवं मौलिक चिन्तन अपेक्षित हैं। लेखक में ये गुण पर्याप्त मात्रा में हैं जिनका निदर्शन इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में हुआ है।

सब देशों के साहित्य में उत्कृष्ट और निकृष्ट साहित्य पाये जाते हैं और यह भी देखा जाता है कि उत्कृष्ट साहित्य की तुलना में निकृष्ट साहित्य की संख्या अधिक होती है। किन्तु फिर भी समालोचक का काम होता है गुण-दोष का विचार-विश्लेषण करते हुए किसी साहित्यिक रचना के साहित्यिक गुणों पर इस रूप में प्रकाश डालना जिससे पाठक का रस बोध उद्दीप्त हो उठे और साहित्य पाठ का यथार्थ आनन्द लाभ कर सके। यह तभी संभव है जब कि समालोचक किसी वाद्यापूर्वा ग्रह से ग्रस्त न हो और सहानुभूति के साथ वस्तु पर समालोचना कार्य में प्रवृत्त हो।

प्राथमिकी में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानियां, गद्य और समीक्षा इन विषयों की कतिपय विशिष्ट रचनाओं को लेकर लेखक ने अपने मन्तव्यों को बड़े ही स्पष्ट एवं बोधगम्य रूप में उपस्थित किया है। कहीं भी उन्होंने विषयान्तर नहीं होने दिया है और न असङ्गतियों की अवतारणा की हैं। निर्वैयक्तिक भाव से अपने विचारों को रखा है और पाठकों के ऊपर अपने मत को कहीं भी हावी होने नहीं दिया है। इस पुस्तक की एक विशेषता है समालोचना के क्षेत्र में गतानुगतिकता का वर्जन और मौलिक चिन्तन धारा का अनुसरण।) चिन्तन की यह धारा सहज स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुई है। लेखक की दृष्टि पैनी है और आलोच्य कृतियों के मर्मस्थलों तक पहुंचने की उनमें अद्भुत क्षमता है। कहीं-कहीं तो वे विषय के प्रतिपादन में इतने तन्मय

हो गये हैं कि ग्रन्थ लेखक के साथ उनका तादात्म्य जैसा हो गया है। यह संभव नहीं है कि लेखक से सभी विचारों एवं निष्कर्षों से हम सहमत हों, फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि (पक्षपात शून्य लेखक का यह तटस्थ अध्ययन साहित्य के पाठकों के लिए रुचिकर ही नहीं विचारोत्तेजक भी सिद्ध होगा। लेखक ने हृदयग्राही शैली में अपने भावों का गुम्फन किया है।) गद्य साहित्य के सम्बन्ध में लेखक के विचार की बानगी देखिये : "विषय-विविधता और व्यापकता गद्य का ऐश्वर्य है, टकसाल भाषा का ग्रहण इसके प्राण। यह एक साहित्यिक विडम्बना है कि छन्द और तुम में जकड़ी कविता धरती, आसमान पर बेरोक विचरण करती है, मिट्टी और तारों से शृङ्गार करती है जब कि इन बन्दानों से मुक्त होने पर भी गद्य मुख्यत: धरती पर ही लोटा करता है और जब चांद, सितारों से सहवास करता है तो इसे कटुवचन का भागी बनना पड़ता है।"

कविवर प्रभात के संवर्त्त 'काव्य की आलोचना के प्रसंग में लेखक ने लिखा है :' प्रभात भूलत: चिन्तन के कवि हैं, गूढ़ चिन्तन के। इस चिन्तन को हम इनके काल, देश से विलग नहीं कर सकते, इसमें सामयिक चिन्ताओं की प्रतिध्वनियां हैं, क्रान्ति, देश प्रेम, समाज चेतना के युगीन आह्वान है, परन्तु यहीं तक यह सीमित नहीं रह जाते। इनमें प्रसाद का घनाव विशेष है, पंत दिनकर का सतहपन नहीं; निराला का ओज है, उदात्त स्वर है, नेपाली, नीरज, नरेन्द्र की कोरी भावुकता नहीं।" 'कुरुक्षेत्र' के सम्बन्ध में कुरुक्षेत्र में संवेदना है और गवेषणा भी ज्ञानी के मस्तिष्क का चमत्कार तथा शंकाकुल हृदय का उद्गार भी दर्शन का तर्क भी और अनुभूति को सत्य भी। उसकी व्यञ्जना का आधार है इतिहास, महाभारत का और बीसवीं सदी का इतिहास।" अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' और जेम्स जायस के उपन्यास 'यूलीसिस' की तुलना मूलक आलोचना देखिये : "शेखर एक जीवनी" भारत के कई दशकों की उन सभी प्रवृत्तियां. घटनाओं, भावनाओं, दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करता है जिनके मानव भारत के मानव, आलोड़ित पीड़ित थे, उसी मात्रा में जिस मात्रा में "यूलीसिस" बीसवीं सदी के मानव का।

पुस्तक के अन्त में लेखक के उन लेखों का समावेश किया गया है जो १९४४ से १९४५ की अवधि में प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित हुए थे और जो पुस्तक की विषय-वस्तु से सम्बन्धित हैं।

समकालीन हिन्दी साहित्य की उपलब्धियों का यह तटस्थ अध्ययन हिन्दी साहित्य के जिज्ञासु एवं रसज्ञ पाठकों के लिए उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। लेखक के विचार सर्वत्र सुलझे हुए हैं और उनकी विवेचना शैली प्रांजल हैं। इस ग्रन्थ के अगले दो भागों के प्रकाशन की प्रतीक्षा उत्कंठा के साथ की जायगी।

"उत्तर बिहार" एवं "योगी"

लेखक—बदरी नारायण सिन्हा,
मूल्य १०) रु०

प्रकाशक—श्री गणपत प्रकाशन,
पटना।

बदरी नारायण सिनहा

डॉ० बेचन

हिन्दी के मर्मज्ञ आलोचक श्री बदरी नारायण सिनहा, आई० पी० एस०, आरक्षी अधीक्षक, भागलपुर का समीक्षा ग्रंथ "प्राथमिकी" [अप्रैल १९६५] हिन्दी आलोचना साहित्य में मौलिक गवेषणा और विश्लेषण का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कई दृष्टियों से इस मौलिक ग्रन्थ का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान होगा चूँकि इस ग्रन्थ का प्रकाशन अभी कुछ ही दिनों पूर्व पटना से हुआ है, अतएव इसके प्रचार-प्रसार में पूरी तत्परता न हो सकने के कारण संभव है कि शीघ्र ग्रन्थ को स्थान बनाने में समय लगे, किन्तु अन्ततः निष्पक्ष मूल्यांकन की दृष्टि से इसका स्थान अक्षुण्ण रहेगा ही। श्री सिनहा साहब हिन्दी के चिर-परिचित लेखक हैं। सन् १९४४-४५ से ही हिन्दी में समीक्षा लिख रहे हैं। सरकारी सेवा, वह भी संघर्षमय पुलिस में रहकर जिस मर्मज्ञता से इन्होंने गत बीस वर्षों [सन् १९४४ से १९६५] के हिन्दी साहित्य की कई एक महत्वपूर्ण कृतियों का तटस्थ अध्ययन-मनन कर अपनी राय बनायी है, वह इनके हिन्दी प्रेम, हिन्दी-सेवा और आश्चर्यजनक प्रतिभा का अतुलनीय उदाहरण है। श्री सिनहा के महत्व पूर्ण आलोचनात्मक निबंध सन् १९४४-४५ में "आज" में प्रकाशित हुए थे, जिस समय पराड़कर ऐसे सिद्ध पत्रकार उसके संपादक थे। उसी समय श्री सिनहा का एक अलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह "आधुनिक साहित्य" नाम से प्रकाशनार्थ तैयार हो चुका था, किन्तु छात्र जीवन की व्यस्तता के कारण श्री सिनहा का वह ग्रंथ पांडुलिपि के रूप में लिखा ही रह गया, प्रकाशित न हो सका। सन् १९४६ ई० में श्री सिनहा ने अंग्रेजी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। राँची में प्राध्यापक बने, पर सरकारी सेवा प्राप्त करने की तैयारी में लेखन, एक प्रकार से स्थगित सा हो गया। सन् १९५२ में श्री सिनहा ने

आई० पी० एस० का पद प्राप्त किया और कुछ प्रशिक्षण के बाद पुलिस सेवा में पदस्थ हो गये। पद की व्यस्तता ने कभी लेखन के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया। छिटफुट लेखन के रूप में लिखने का अभ्यास जारी रहा। अंग्रेजी में सुन्दर लेखों का परायण श्री सिनहा ने किया; जिसका विषय निखालिस साहित्य ही नहीं, उनकी सेवा से भी सम्बन्ध रखता था। श्री सिनहा के ऐसे कई अंग्रेजी लेख देश के महत्वपूर्ण पत्रों में आये और गोष्ठियों में पढ़े भी गये। श्री सिनहा के कई अंग्रेजी लेख कालेज की पत्रिका में बिखरे पड़े हैं जो उनके विद्यार्थी जीवन में लिखे गये थे। आज भी उनके संकलन साहित्य की निधि बन सकते हैं। श्री सिनहा के गद्य में, शुष्क आलोचनात्मक विश्लेषणात्मक गद्य में भी, काव्य की स्त्रोतस्वनी बहती हुई दिखाई देती है, इसका कारण है कि श्री सिनहा में कवित्व शक्ति है और कवित्वशक्ति आत्मा को रागमय करती है, जिससे आलोचक की दृष्टि संवेदनशील बनकर किसी कृति के साथ न्याय कर सकती है। श्री सिनहा की कवित्वशक्ति का एक उदाहरण उनकी पुस्तक "प्राथमिकी" में प्रकाशित "माँ" [हिन्दी के प्रति उनकी एक वन्दना है। जिसमें काव्य का निर्वाह तो है ही, मार्मिक कवित्व और गहन आस्था के स्वर भी हैं।

श्री सिनहा ने कई सुन्दर संस्मरण भी लिखे हैं, जिनमें मौलिक सृजनात्मक साहित्य का आनन्द आता है। अपने पिता एवं स्वर्गीय भ्रात की याद में लिखे गये उनके संस्मरण अपनी मार्मिकता तटस्थता और विवेक शैली के लिए शायद हिन्दी साहित्य में सब दिन याद किए जायेंगे। सन् १९६५ जुलाई में श्री सिनहा की कई एक कहानियाँ भी प्रकाश में आई हैं, जिनमें गहन मार्मिकता, आंचलिकता और आधुनिक युग-बोध की अभिव्यक्ति बड़ी तटस्थता से हो पायी है। "मैना के उलझ गये डैना" भारतीय संस्कृति की झाँकी, आदि रचनाएँ उनके निजत्व को अभिव्यक्त करती हैं। एक अंग्रेजी लिखा-पढ़ा रचनाकार अक्सर अपनी रचनाओं को पांडित्य के भार से लाद देता है, किन्तु ऐसा कहीं भी श्री सिनहा

की रचना में दृष्टिगोचर नहीं होता। उनकी रचनाओं की संवेदनशीलता मेरा मन मोह लेती है, किन्तु हमें केवल भावुक बनाकर नहीं छोड़ती है, बल्कि बहुत कुछ सोचने के लिए विवश कर देती है। "प्राथमिकी" में कहीं भी उद्धरणों की भीड़भाड़ और अंग्रेजी शब्दों की पच्चीकारी नहीं की गई है, बल्कि इस कृति के द्वारा लेखक ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक अंग्रेजी लिखा-पढ़ा विद्वान् हिन्दी आलोचकों की अपेक्षा अपने व्यक्तीकरण में अंग्रेजी शब्दों का सहारा प्रायः नहीं लेता है। समीक्षा की मौलिक, किन्तु निज पद्धति का निर्माण इन्होंने किया है, इसलिए सम्पूर्ण पुस्तक में कहीं भी अपनी बातों की पुष्टि के लिए लेखक ने हिन्दी की परम्परागत आलोचना शैली के अनुसार बड़े छोटे उद्धरणों का सहारा नहीं लिया है। लेखक अंग्रेजी साहित्य के विद्वान हैं और कई वर्षों तक अंग्रेजी के प्रतिष्ठित प्राध्यापक भी रह चुके हैं; फिर भी अंग्रेजी शब्दों के बाहुल्य अथवा अंग्रेजी उद्धरणों से लदी इनकी समीक्षा नहीं है यद्यपि हिन्दी में यह प्रचलन अब भी है।

समीक्षा के सम्बन्ध में लेखक की कुछ मान्यताएँ बड़ी प्रभावोत्पादक हैं वह मानता है कि "मैं किसी रचना को उसके प्रकाशन काल की पृष्ठभूमि में देखने का समर्थक हूं।" लेखक की यह मान्यता इनकी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक समीक्षा-पद्धति का उदाहरण प्रस्तुत करती है। लेखक साहित्य में आंचलिकता या आंचलिक शब्द को महत्व नहीं देता है। उनका कहना है कि जिन कृतियों को आधार मानकर आंचलिकता का नारा दिया जा रहा है, वे कृतियां जीवन की शाश्वत समस्याओं पर भी प्रकाश डालती है। अतएव आंचलिकता का नारा बड़ा भ्रमपूर्ण है। सलिए लेखक "देहाती दुनियां" को एक प्रयोगात्मक उपन्यास मानते हुए भी आंचलिक उपन्यास मानने के विरोधी हैं। यहां लेखक का मौलिक विश्लेषण द्रष्टव्य है। लेखक मानता है कि "मै अंगरेजी साहित्य के नमूनों और हिन्दी साहित्य की कृतियों की तुलना करने का न अभ्यस्त हूँ, न समर्थक ही, क्योंकि प्रथमतः अंगरेजी साहित्य का ज्ञान हम सबों को नहीं और और द्वितीयतः सफल कृति की अपनी इकाई होती है जिसमें किसी भी

प्रतिष्ठित कृति या धारा का प्रभाव पक्ष इसमें इतना घुलमिल जाता है कि उसे बिलगाना कठिन होता है, यदि असम्भव नहीं।"

लेखक की यह मान्यता हमें सोचने को विवश करती है। इस परिवेश में आलोचकों की यह धारणा ठीक ही लगती है कि प्रत्येक मौलिक कृति आलोचना के रूढ़िगत सिद्धांतोंको बदल देती है। लेखक की धारणा बड़ी समीचीन लगती है कि "परख की परख का नाम समीक्षा है।" "पहचान की पहचान ही समीक्षा है।" यह विश्लेषन लेखक की सहानुभूति का परिणाम है इसलिए लेखक प्राथमिकी के सम्बन्ध में स्वयं कहता है "—प्राथमिकी के लेखन काल में पहले मैंने मौलिक रचनायें पढ़ीं, समीक्षायें पढ़ीं जब बर्तमान अध्याय को लिखने को प्रवृत हुआ, तटस्थता बरती जाती कैसे! हाँ, इसके बहुत पूर्व जो कुछ मैंने पढ़ा था, विशेष कर जब विद्यालय में था, जिन कृतियों के मनन से साहित्य के अन्तराल में प्रवेश कर पाया था, गुरुजनों से जो कुछ जाना था, उन सब का ऋण स्वीकार ही रहा। इसलिए मैं मौलिकता का ठगपन नहीं कर सकता। परन्तु समीक्षा के धर्म के पालनार्थ मैंने हिन्दी की समीक्षाएँ बाद में पढ़ी है। किसी व्यक्ति के स्व-अर्जित मत में उलझ जाना मुझे अभिष्ट नहीं, हाँ, भ्रान्तियों को श्रेय न मिले यह अभीष्ट है।"

लेखक को अपने इस महान उद्देश्य में पूरी-पूरी सफलता मिली है। आधुनिक साहित्य की विवेचना में इतनी तटस्थता आश्चर्यजनक प्रतिभा की ही देन है। यदि ऐसा नहीं होता तो स्व० आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के मौलिक पाण्डित्य का रहस्य समझना भी कठिन होता। लेखक उनकी मौलिकता का रहस्य खोल रहा है "आज की छोटी कहानी" में कहानी की व्याख्या नलिन विलोचन शर्मा की नहीं है, उद्धृत भी रहती तो बात ठीक थी अक्षरशः ब्लीविट की है अंग्रेजी समीक्षा का हिन्दी रूपान्तर है। इस प्रकार की अराजकता से हिन्दी समीक्षा ग्रसित रही है, इसमें सन्देह नहीं।"

अन्वेषण की इस प्रक्रिया में उनका मत है कि हिन्दी के अधिकांश श्रेष्य आलोचकों का हिन्दी गद्य अंग्रेजी गद्य शैली की अनुभूति है। अधिक गद्य तो

अङ्गरेजी शब्दावली का अनुवाद ही है। हिन्दी के श्रेष्य आलोचक डा० नगेन्द्र, बाजपेयी, आचार्य नलिन बिलोचन शर्मा आदि लेखकों का गद्य इसी कोटि में आता है।

पुस्तक को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है — प्रथम खण्ड के अन्तर्गत समकालीन काव्य, उपन्यास और कहानियों का विवेचन है; द्वितीय खण्ड में वर्तमान नाटक और समीक्षा की चर्चा की गई हैं, तृतीय खण्ड में लेखक के उन निबंधों का संग्रह है जो उनके विद्यार्थी जीवन काल में लिखे गये थे।

भाषा और शैली में सर्वत्र प्रौढ़ता और गम्भीरता दृष्टिगोचर होती है। अधिकांश पंक्तियां एक एक सिद्धान्त वाक्य बनकर आयी हैं :— जैसे "शेखर एक जीवनी और मैला आँचल युग के महा काव्य हैं। जीवन की एकही मार्मिक घड़ी एक ही अनुभूति एक ही विचारधारा साहित्यकार का प्रेरणा-स्रोत बन जाती हैं जिसे वह अपने शब्दों और प्रतीकों द्वारा प्रकट करता है। भाषा वह पत्थर है जो प्रयोग के प्रवाह में घिसकर चिकनी, सुथरी और मनोरम होकर बोलने लगती है।"

खण्ड एक में प्राथमिकी के अन्तर्गत जो स्थापना दी गई है, वह एक प्रकार से इसकी समीक्षा का घोषणा-पत्र कहा जा सकता है। इस कथन को एक प्रकार से आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है जिसमें कई-मौलिक प्रश्न ऊठाये गये हैं। लेखक की यह पहली प्रस्तक प्रकाश में आयी है मुझे विश्वास है कि उनकी आगामी कृतियों के द्वारा भी हिन्दी समीक्षा साहित्य को नयी दृष्टि मिलेगी और हिन्दी संसार को सिनहा साहब के रूप में एक मौलिक आलोचक का दर्शन होगा। आगामी रचनाओं की भी घोषणा की जा चुकी है। प्राथमिकी की पूरक रचनाएँ "माध्यमिकी" और "आज तक" की होंगी जिनमें गणतन्त्रोत्तर हिन्दी साहित्य के दस वर्षों अर्थात् सन १९५० ई० की गति-विधियों और उपलब्धियों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायेगा। हमें

विश्वास है कि हिन्दी संसार इनकी इन कृतियों की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करेगा।

हिन्दी में अधिकांश समीक्षा छोटे-छोटे निबंधों के रूप में लिखी गई है। कई निबन्धों का संग्रह एक समीक्षा ग्रन्थ की संज्ञा प्राप्त कर लेता। संपादित ग्रन्थ और इतिहास ग्रन्थों को छोड़कर समकालीन साहित्य पर लिखी गई वरेरण्य आलोचकों की भी अधिकांश समीक्षा या तो निबंधों के संकलन मात्र है या छात्रोपयोगी सहायक ग्रन्थों को छोड़कर बहुत कम ही कृतियाँ ऐसी है जो समीक्षा की मूल प्रकाश-प्रवृत्तियों के विश्लेषण के लिए उसी उद्देश्य से लिखी गई हो। इसलिए हिन्दी समीक्षा में मूल्यांकन की अब तक वैसी वैज्ञानिक शैली भी नहीं उभर पायी है जैसी शैली वाटर एलन के 'दी इंगलिश नवेल', ई० एम० फोर्रस्टर की 'दी आसपेक्ट आफ दी नोवेल' स्काट की, "दी मेकिंग आफ लिटरेचर" इलिया इहरेन वर्ग की 'दि राइटर एण्ड हिज क्राफ्ट' फेज़र की 'दी मार्डन राइटर एण्ड हिज वर्ल्ड' स्पेडर की "दी स्ट्रग्ल ओफ दी मर्डन," आदि में प्रयुक्त हुई हैं। इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि हिन्दी समीक्षक अङ्गरेजी समीक्षा का अनुकरण करें। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि नयी हिन्दी समीक्षा शैली को अधिक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक होना चाहिए। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस शैली का प्रयोग आधुनिक साहित्य की भूमिका में किया था, किन्तु इस समीक्षा शैली का निर्वाह वे नहीं कर पाये। श्री शिवदान सिंह चौहान ने आलोचना के मान और प्रगतिवाद आदि के कुछ एक निबंधों और आलोचना के सम्पादकीय अग्रलेखों में इस शैली का सुन्दर परिचय दिया है। यह हर्ष की बात है कि श्री बदरी नारायण सिनहा जी ने ऐसी ही शैली का अनुसरण किया है। इनकी प्रथम पुस्तक देखकर ही हमें इनकी क्षमता में अटूट विश्वास हो गया।

हम लेखक की इस प्रगति की कामना करते हैं कि ऐसे मौलिक आलोचक का उदय यहां से हुआ है। समीक्षा के क्षेत्र में बिहार एक प्रकार से बंजर

भूमि सिद्ध हो चुका है ऐसी अवस्था में 'प्राथमिकी' का प्रकाशन एक नई आशा जगाता है।

हिन्दी की ज्वलंत समस्याओं से भी वे बेखबर नहीं हैं। उसका मत है कि भाषा का विकास बोलचाल के द्वारा होता है जिसकी न अवधि है और न परिधि। बहस या सरकारी विज्ञप्तियों के चाबुक से भाषा न बन सकी है और न बन सकेगी। लिखित भाषा बोल चाल की भाषा की अनुगामिनी होती है और इसके स्रष्टा होते हैं सचेत लेखक। आज हिन्दी में अरबी, फारसी, संस्कृत, फ्रेंच, पुर्तगाली, अङ्गरेजी और भारत की विभिन्न भाषाओं के शब्द धड़ल्ले से प्रयोग में आ रहे हैं। यह किस बहस या चाबुक के फलस्वरूप ?

"प्राच्य भारती"

'प्राथमिकी' : ले. बदरीनारायण सिनहा

—राजानन्द

'समीक्षक में न तो दुर्वासा का आक्रोश रहता है न विश्वामित्र का दम्भ बल्कि वशिष्ठ की सहृदयता रहती है'। 'संवेदना साहित्य की प्राण-धारा होती है, इसलिये समीक्षा की भी'।—'समीक्षक अन्तर्दर्शी और समदर्शी होता है पूर्वाग्रह-विहीन, मोह, राग से परे'। और अन्त में 'समीक्षा साहित्य का, संस्कृति का ज्ञान है, बयान मात्र नहीं'। जब कोई समीक्षक, समीक्षा के उपरोक्त गुण बताता है, तो स्वभावतः यह अपेक्षा उससे हो जाती है कि वह अपनी इन धारणाओं को किस सीमा तक अपनी समीक्षा-पद्धति तथा अपने समीक्षात्मक दृष्टिकोण में निभाता है। 'प्राथमिकी' के लेखक से मैंने यह अपेक्षा की और एक हद तक उसमें यह पाया। 'प्राथमिकी' का समीक्षक-लेखक अपनी पैठ में तटस्थ है, संक्षिप्त है तथा तत्वान्वेषी है। पुस्तक को पढ़ने के बाद दो आपत्तियां आज के फैशनेबिल आलोचक उठा सकते हैं, कि भाषा तो सहज बोलचाल की है, समीक्षा की भाषा कहां हैं (या तो उसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली होनी चाहिये या अंग्रेजी के शब्द) 'प्राथमिकी' का लेखक ऐसा कर सकता था, उसकी सक्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता लेकिन उसने जान कर नहीं किया। उसके पास जो कुछ भी कहने को है वह सीधा है; नवनीत अथवाक्रोम रूप में है, तथा अध्ययन—मनन के बाद निष्कर्ष-रूप में है। दूसरी आपत्ति, कि समीक्षक का दृष्टिकोण सांस्कृतिक है—वह इस दृष्टि से विदेशी नहीं है, स्वदेशी है। विदेशी भी हो सकता था। उसका अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान

अल्प घनत्व का नहीं मालूम पड़ता। यह भी नहीं मालूम पड़ता कि उसने समीक्षात्मक पुस्तकों से समीक्षा के अंश उड़ाए हैं या उनका भाषा-परिवर्तन किया है। उसने जो भी लिखा है, अध्ययन करने के बाद लिखा है, इसलिये अपने निष्कर्षों में मौलिक है। समीक्षा की स्वस्थ परम्परा तो यही है कि आलोच्य पुस्तक को गम्भीरता से आद्योपान्त पढ़ा जाय; उसको सूक्ष्म दृष्टि से आंका जाय, उसका न्याय-संगत मूल्यांकन किया जाय। पर आज की आलोचनाओं तथा समीक्षाओं में यह प्राप्ति दुर्लभ है। 'प्राथमिकी' में मिलती है। लेखक न तो दुराग्रही रहा है न पक्षाग्रही। लेखक अधिकतर संतुलित रहा। तुलनात्मक आलोचना इसने उन्हीं स्थानों पर की है जहां वह आवश्यक रही है। अनावश्यक बेमेल तुलना वह नहीं करना चाहता—उसने की भी नहीं है।

एक विशेषता और है लेखक में: वह विधाओं के रूप को और उनकी सूक्ष्मतम भिन्नता को भी समझता है; इसलिये जीवनी और 'शेखर: एक जीवनी' का भी अन्तर बता पाता है। वह यह भी बता सकता है कि ज्यॉस की 'युलीसिस' तथा अज्ञेय की 'शेखर: एक जीवनी' में क्या अन्तर है। प्रथम में विश्व के मानव की चेतनाओं की अपनाया गया है और दूसरे में भारतीय मानव की चेतना की। 'युलीसिस' बीसवीं सदी के मानव का आन्तरिक-बाह्य अध्ययन है, 'शेखर: एक जीवनी, भारत के कई दशकों के मानव का'। वह यह भी बता सकता है कि लॉरेंस ने नायिका तथा उसके पति तथा प्रेमी को भँवर में छोड़ कर आस्थाओं का हनन किया। 'घेरे के बाहर' त्याज्य है—परिणति के अभाव में। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्र लेखा' उपन्यास इस दृष्टि से सफल है। लेखक जब ऐसे निष्कर्ष निकालता है तो उसकी स्पष्ट तटस्थता सामने आ जाती है—उसके मस्तिष्क का खुलाव भी; नहीं तो वह कह सकता था 'घेरे से बाहर' त्याज्य है क्योंकि अश्लील है। पर उसकी यही सधी दृष्टि उसको खण्ड—एक (कविता, कथा, उपन्यास) और खण्ड दो (नाटक, गद्य,

समीक्षा) में कहीं भी अतिरेक की तरफ नहीं जाने देती। यह बात दूसरी है कि डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की आत्म-कथा को देखता हुआ लेखक, बाल्मीकि चौधरी के साथ बह जाए और लिखदे 'राजेन्द्र पुरुषोत्तम थे' और इन की पंक्तियों में बाल्मीकि के राम और राजेन्द्र एक हो जाएँ। अगर सराहना भी है तो यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार का दोष है। पर इस प्रकार की टिप्पणी दकियानूसी है, जैसे उपरोक्त पंक्तियों की तुलना अतिश्योक्ति अलंकार से करना!

—'वातायन'
बीकानेर

'प्राथमिकी' : आलोचना में एक नई दिशा

—गोस्वामी मदनगोपाल 'अरविंद'

एक आलोचना ग्रन्थ पर कुछ लिखना एक परीक्षक की परीक्षा अथवा एक चिकित्सक की चिकित्सा करने के समान है। आलोचक साहित्य का विवेचन करता है, मूल्यांकन करता है। वह उसके रूप, सौंदर्य, महत्व तथा उसकी त्रुटियों और विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। प्राथमिकी के लेखक अपनी पुस्तक के आरम्भ में ही लिखते हैं—'मैं कायल हूँ इस कथन का जो मौलिक स्रष्टा नहीं हो सकता, वह समीक्षक बन जाता है।' किन्तु इन पंक्तियों के लेखक के मत में एक समीक्षा ग्रन्थ भी उतना ही पूर्ण साहित्य है, जितना एक मौलिक कृति। एक सफल ससींक्षक अपने निरन्तर अध्ययन, चिन्तन और अनुभूतियों के द्वारा न केवल साहित्य का मूल्यांकन करता है, बल्कि एक प्रकाश-दंड के समान साहित्यकार के लिए मार्ग प्रदर्शक भी होता है। एक सफल समीक्षक साहित्य को परिष्कृत, उद्भासित और अनुप्राणित करता है। साहित्य का उत्थान और विकास कर अपनी भाषा, अपने देश, राष्ट्र और समाज का उत्थान करना समीक्षक का महान कर्त्तव्य है।

'प्राथमिकी' एक समीक्षा ग्रन्थ है। लेखक हैं श्रीयुत बदरी नारायण सिनहा। श्रीयुत् सिनहा पहले शिक्षा विभाग में अँगरेजी के एक सफल प्राध्यापक थे। किन्तु आजकल वे आरक्षी अधीक्षक के पद पर भागलपुर में प्रतिस्थापित हैं। 'प्राथमिकी', लेखक के शब्दों में, 'समकालीन साहित्य का एक तटस्थ अध्ययन' है। उसकी और दो पूरक रचनाएँ 'माध्यमिकी' और 'आज तक की' सम्भवतः शीघ्र ही प्रकाशित होने की है। यह सचमुच बड़े ही आनन्द का विषय है कि, एक ऊँचे सरकारी पद के भार को वहन करते हुए भी, लेखक ने हिन्दी-समीक्षा के क्षेत्र में इतनी विशाल सेवा की है और

अभी भी अपनी एकान्त निष्ठा और अनवरत साधना से हिन्दी की सेवा में निरन्तर तल्लीन हैं।

श्रीयुत् सिनहा के इस ग्रन्थ का अवलोकन करने पर जो बात हमें सबसे पहले आकर्षित करती है, वह है पुस्तक के वस्तु-विषय की विस्तृत परिधि। लेखक ने काव्य, नाटक, कथा, उपन्यास, गद्य, समीक्षा आदि हिन्दी साहित्य की सभी विधियों में समान रूप से विचरण किया है। इन्होंने न केवल हिन्दी साहित्य के सभी अंगों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया है, बल्कि इन सभी क्षेत्रों में गहराई तक उतर कर उनका गंभीर अनुशीलन भी किया है। यह निस्सन्देह लेखक के सुचिन्तित एवं गहन अध्ययन का परिचायक है। इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दी के अन्य आलोचकों ने भी समीक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किये हैं; फिर भी इतने संयमित और सन्तुलित रूप में वर्तमान हिन्दी साहित्य के समस्त अवयवों पर समुचित प्रकाश डालनेवाली यह रचना निस्संदेह रूप से हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

साहित्य समाज का दर्पण है। अतः साहित्य के भीतर किसी न किसी रूप में समाज की आत्मा प्रतिध्वनित होती है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि अपने युग की आत्मा को ध्वनित करने वाला साहित्यकार मानव की चिरन्तन भावनाओं से कटकर अलग हो जाय। युग भी चिरन्तन का ही एक अंश है। काल शाश्वत का ही अंग है। जिस प्रकार समुद्र और उसकी लहर एक दूसरे से सर्वथा अलग नहीं, बल्कि एक दूसरे के साथ अन्तर्प्रविष्ट हैं, उसी प्रकार युग में भी शाश्वत ध्वनित होता है। अतः युग और चिरन्तन का वर्गीकरण तथा काव्य में इस वस्तु की इतनी प्रमुखता जितनी हम आज की समीक्षा में पाते हैं, वास्तव में एक भ्रामक मान्यता है। प्राथमिकी के सुयोग्य लेखक ने अपनी पुस्तक में इस तथ्य का विशद स्पष्टीकरण किया है। लेखक लिखते हैं—'प्रति साहित्य में चिरन्तन तथा सामयिक का योग रहता है। मनुष्य परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सकता, उसकी ऊँची-ऊँची उड़ानें भी किसी धरातल से ही सम्भव होती हैं। अतएव किसी

साहित्य पर कोरी सामयिकता का दोष लगाना कुण्ठित दृष्टिकोण का ही परिचायक है।' 'चिरन्तन या सामयिक वर्गीकरण की दो मिथ्या, अवांछनीय मान्यताएँ हैं। यथार्थवाद और आदर्शवाद ने साहित्य पर कड़ा आघात किया है। साहित्य का मूल्यांकन उसकी कथन-शैली और कथन-सामग्री द्वारा ही किया जा सकता है, लेखक इस समस्या को आगे चल कर और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं "सफल साहित्य से मेरा अर्थ है, वह एक साथ ही सामयिक और चिरन्तन होगा। मानव की मूल भावनायें न बदली है, न बदलेंगी। काम, क्रोध, लोभ, भय, मोह, राग, विराग, त्याग आदि सतत हैं। बाह्य जगत, समाज, रूढ़ि, शृङ्खला और परम्परा परिवर्तनशील हैं। साहित्यकार की दृष्टि अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों होती है।' इन पंक्तियों में विषय का स्पष्टीकरण इतना साफ है कि इस दिशा में हमें यथेष्ट प्रकाश मिलता है। इन पंक्तियों में तथा समीक्षा की इन मूल समस्याओं पर पुस्तक के भीतर प्रस्तुत ऐसे और भी विचारों में हम देखते हैं कि लेखक ने हिन्दी आलोचना को आज तक उसके अंतर में पलती हुई रूढ़ियों, संकीर्णताओं और विविध अवांछिताओं से ऊपर उठाकर सर्वथा एक नये धरातल पर ला रखा है। आज की समीक्षा के क्षेत्र में हम इसे श्री सिनहा की एक विशिष्ट देन मानते हैं।

समीक्षा के और भी अनेक तत्वों के सम्बन्ध में श्री सिनहा ने जो सर्वथा नवीन चिन्तन किया है, वह भी इस क्षेत्र में उनकी एक बड़ी देन है। हिन्दी समीक्षा में हमें आज भी ऐसा प्रतीत होता है कि वह विविध वादों और भ्रामक विभाजनों के दलदल से अपने को मुक्त नहीं कर पा सकी है। साहित्य के भीतर विविध विधाओं की विवेचना करना किसी दूरी तक समीक्षक के लिए अपेक्षित है, किन्तु मात्र उन्हीं को समीक्षा का मौलिक तत्व समझना किसी भी समीक्षा का सिद्धान्त नहीं हो सकता। इन स्तरों के ऊपर आलोचक को साहित्य के वास्तविक सौंदर्य और महत्व का मूल्यांकन करना ही उसकी वास्तविक विवेचना है। इस दिशा में हम प्राथमिकी के

लेखक को जितना स्पष्ट, निरपेक्ष और समीक्षा के मौलिक तत्त्वों के ऊपर आधारित पाते हैं, उतना हमें उनके पूर्व के समीक्षकों में नहीं मिलता। श्री सिनहा के इस आलोचना-ग्रन्थ में हम छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि का वर्गीकरण कहीं भी नहीं पाते। सम्पूर्ण पुस्तक में हम उन्हें एक स्पष्ट सहानुभूतिशील व्यापक दृष्टिकोण को लेकर चलते हुए देखते हैं। सिद्धान्त रूप से भी लेखक इस दिशा में चिन्तन करते हुए लिखते हैं: "चूँकि वर्गीकरण बोधगम्य होता है, इसलिए वह आलोचकों को लुभाता रहा है। फलस्वरूप किसी भी कृति को एक संज्ञा देकर ही समीक्षा की पराकाष्ठा समझ ली गई है। समीक्षक के अस्त्र व्यंग, पक्ष या वाद के आग्रहपूर्ण प्रहार नहीं, जिज्ञासा, मनन एवं सहानुभूति है। तटस्थता समीक्षा का प्रधान गुण होती है। समाज नीति, संस्कार कल्याण-कारिणी विचारधारा, समष्टि का हित, व्यक्ति की परख, भाषा का नैसर्गिक उत्थान ऐसी निधियाँ हैं जिन्हें समीक्षकों को अपनाना है।' हम हिन्दी के उन्नायकों एवं आलचकों से अनुरोध करते है कि वे 'प्राथमिकी' के लेखक के इस स्वस्थ एवं व्यापक दृष्टिकोण को उदारतापूर्वक हृदयंगम करने की कोशिश करें।

हिन्दी साहित्य का जैसे-जैसे विकास हुआ है, वैसे-वैसे उसने नवीन युग की चेतना को भी अपनाया है। यह नवीन चेतना चाहे हमारा अपना परिष्कृत रूप हो अथवा बाहर से आई हुई वस्तु हो किसी भी रूप में वह आज हमारे साहित्य और समाज में प्रविष्ट हो रही है। इस अवतरण को हम रोक नहीं सकते। रोकना वांछनीय भी नहीं हैं। हम अपने साहित्य और समीक्षा के भीतर आज किसी दूरी तक पाश्चात्य दृष्टिकोण का प्रभाव देखते हैं। इस दिशा में हमारे वर्तमान साहित्यकार और आलोचकों को इस बात की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि वे न तो लकीर के फकीर बने रहें और न मार्क्स, लेनिन अथवा फ्रायड के सिद्धान्तों के भीतर ही अपने को इतना निमज्जित कर दें कि उन्हें अपनी संस्कृति और परम्पराओं से कोई सम्पर्क न रहे। प्राथमिकी के लेखक ने इस पक्ष में भी हमारे लिए समुचित दिशा-निर्देश किया है। लेखक लिखते हैं—'समीक्षक की शैली, विश्लेषण, तुलना विगत, वर्तमान और भविष्य

के संदर्भों में विचरण करती है। 'हिन्दी समीक्षा अधिकांशतः संस्कृत शास्त्रों के निकट रही है। अब अंशतः पाश्चात्य दृष्टिकोणों के निकट भी। जब इसमें अलंकारों का ही प्राधान्य नहीं रहता, अन्य तथ्यों का भी योग रहता है।' आगे चलकर लेखक ने लिखा है : 'मैं हिन्दी समीक्षा को अङ्गरेजी समीक्षा का रूपान्तर होते सह नहीं सकता। साहित्यिक विरोध के आवेश के कारण नहीं, वरन् साहित्य के मूल स्वरूप के कारण।' हिन्दी के एक उच्च कोटि के साहित्यकार के शब्दों में 'प्राथमिकी' के सुयोग्य लेखक 'हिन्दी साहित्य की उपलब्धियों के प्रति अटूट आस्थावान तथा राष्ट्र, देश, हिन्दी और भारतीय संस्कृति की विशाल संभावनाओं के जागरूक अन्वेषी' हैं।

इस छोटे से लेख में पुस्तक के प्रत्येक पहलू पर विस्तृत प्रकाश डालना संभव नहीं, अतः इस लेख में हमने पुस्तक के कुछ प्रमुख तत्वों का केवल विहगावलोकन मात्र किया है। संभव है, लेखक के किन्हीं विचारों से कहीं-कहीं अन्य लोगों का मतभेद हो; किन्तु पुस्तक में प्रस्तुत विचारों की सचाई हमें सहज अनुभूत होती है। प्रत्येक जगह पर विवेचना और शैली संयमित, सन्तुलित और साफ है, जो समीक्षा का एक महान गुण है। लेखक के विचारों से भी हम पूर्णतः सहमत हैं। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' के अन्तर्गत हम यद्यपि भीष्म का स्थान लेनिन को देने के पक्ष में नहीं, फिर भी आज के बदले हुए युग में युधिष्ठिर के स्थान पर गांधी को संबल रूप में लेने का सुझाव हमारे सामने उपस्थित कर लेखक ने कदाचित इस दिशा में साहित्यकारों के एक विशाल दायित्व की ओर संकेत किया है। पन्तजी हिन्दी के एक महाप्राण साहित्यकार हैं, जिनकी अभिव्यञ्जना की विशदता सर्वमान्य रही है! अतः 'उत्तरा', 'लोकायतन' आदि उनके उत्तरकालीन काव्यों में उनके बदले हुए स्वरों के सम्बन्ध में हिन्दी के समीक्षकों को यथेष्ट अनुसन्धान की आवश्यकता प्रतीत होती है। उपन्यास, कथा, नाटक और गद्य के सम्बन्ध में भी 'प्राथमिकी' के लेखक के चिन्तन और अन्वेषण सराहनीय हैं।

'प्राथमिकी' की विशेषता है हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में नवीन और व्यापक दृष्टिकोण उपस्थित कर हिन्दी आलोचना को एक नये उन्मुक्त धरातल पर

प्रतिस्थापित करना। लेखक के शब्दों में 'न कोई वाद न कोई प्रतिपादित धारा ही सफल साहित्य का जन्म दे सकती हैं। सफल साहित्य का सृजन एक घटना होता है और परम्परा यहीं से शुरू होती है।' लेखक की यह उक्ति साहित्य-मनीषियों और समीक्षकों के लिए मनन करने की वस्तु है। पुस्तक में वर्तमान हिन्दी साहित्य की लगभग सभी समस्याओं और उलझनों के सम्बन्ध में गंभीर गवेषणापूर्ण विचार प्रस्तुत है। पुस्तक की एक बड़ी विशेषता यह हैं कि उसमें 'हिन्दी की उपलब्धियों के प्रति अटूट आस्था' की आवाज है। पुस्तक के अनेक खंडों का अलग-अलग पृष्ठांकन यदि अद्योपान्त एक क्रम में होता, तो पाठकों के लिए कदाचित् अधिक सुविधाजनक होता। आशा है, पुस्तक के अन्य संस्करणों के समय प्रकाशक इस ओर ध्यान देंगे। फिर भी पुस्तक की छपाई और सजावट भव्य है। हमारा निश्चित विश्वास है कि श्रीयुत् बदरी नारायण सिनहा का यह समीक्षा-ग्रन्थ हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में नया दृष्टिकोण और नयी दिशा प्रदान करेगा जिसकी आज हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक आवश्यकता है। हम आशा करते हैं कि श्रीयुत सिनहा की उदीयमान प्रतिभा से हिन्दी साहित्य अधिकाधिक रूप से लाभान्वित एवं समृद्ध होगा।

"योगी"

पटना

—:::—

प्राथमिकी

—"ज्वाला" एम० ए०

प्राथमिकी में संकलित विषय तीन खंडों में विभाजित किये गये हैं। प्रथम खण्ड में आलोचक ने उत्तरा : नवीन : संवर्त्त : कुरुक्षेत्र : नये पत्ते : इत्यलम्, औपन्यासिक कृतियों एवं कथात्मक साहित्यिक कृतियों को अपना विवेच्य विषय बनाया है।

दूसरे खण्ड में हिन्दी साहित्य के नाटक, गद्य और समीक्षा-साहित्य पर विविध रूपों में प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक के तृतीय और अन्तिम भाग में नवीन कवियों की प्रवृत्ति, हिन्दी की अतुकान्त कविता, कवि : एक उपदेशक, हिन्दी का ग्रामोन्मुखी साहित्य और आधुनिक हिन्दी कहानियों की मूल प्रवृत्तियों की संतुलित एवं सम्यक् विवेचना की गयी है।

परिशिष्ट रूप में लेखक के आत्माभिव्यक्तीकरण के रूप में 'निवेदन' है जिसमें लेखक की वैयक्तिक, सामाजिक तथा मानसिक स्थिति के आवेष्ठन-परिवेश की भावप्रवण उपलब्धियां लहरा रही है।

प्राथमिकी के लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है : "परख की परख का नाम समीक्षा है। पहचान की पहचान ही समीक्षा है। परख के अभाव की परख भी समीक्षा है, समानतः अनिवार्य। संवेदना साहित्य की प्राणधारा है, इसलिये समीक्षा की भी।" (द्वितीय खंड, पृष्ठ ५४) इसी परिप्रेक्ष्य के आलोक में लेखक ने सन् १९४४ से १९६१ तक के हिन्दी साहित्य के प्रथमांश की विभिन्न विधाओं की गतिविधिओं की तथ्यात्मक विवेचना घनीभूत सूझ के धरातल पर की है। इसकी पूरक रचनाओं के रूप में 'माध्यमिकी' और 'आज तक की' रचनाएँ होंगी।

सन् ४७ के बाद की हिन्दी आलोचना सामान्यतः शुक्लोत्तर आलोचना का विस्तार है। आचार्य शुक्ल के पश्चात् हिन्दी में आलोचना की अनेक प्रवृत्तियां उभर आयी है और इस तरह हम देखते हैं कि प्राथमिकी के लेखक शोधपरक आलोचना की पंक्ति में बैठता है। पूर्वाग्रह मुक्त है। इनकी अपनी सूझ है, सहज और मौलिक। सच्ची बात तो यह है कि इस कृति में कृतिकार कहीं भी सर्वथा किसी प्रकार के पक्षपात के संकीर्ण दोष से आक्रान्त नहीं हुआ है।

वस्तुतः साहित्य की कृतियों की आलोचना करते समय समीक्षक मूल बैठते हैं कि वे साहित्यक कृतियों की विवेचना कर रहे हैं या कृतिकार की। प्राथमिकी का लेखक इस दोष मे सर्वथा मुक्त है। सामाजिक पृष्ठ-भूमि की उपयोगिता समाजिक यथार्थ को समझने तथा परखने के लिए होनी चाहिए प्राथमिकी के लेखक के लिये यही अभीष्ट है। न उसमें दुर्वासा का आक्रोश है और न विश्वामित्र का दम्भ। (पृष्ट ६६, द्वितीय खंड) इसी आलोक-आयाम में आलोच्य वस्तु, साहित्यिक कृति और उसमें अंकित यथार्थ सामाजिक धरातल पर ही प्राथमिकी की संज्ञा का रूप विधान किया गया है।

हर्ष की बात है कि हिन्दी के उदीयमान समर्थ आलोचक श्री बदरी नारायण सिनहा ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'प्राथमिकी' में हिन्दी साहित्य के कुछेक प्रमुख काव्य-ग्रन्थ, कहानी पुस्तकों, औपन्यासिक कृतियों तथा नाटकों और समीक्षा की पुस्तकों की खूबियों और खामियों का शोध परक विवेचन किया है। इन्होंने साहित्य की आलोचना सम्बन्धी समस्याओं का भी अत्यन्त सूक्ष्मता से निदर्शन कराया है।

समीक्ष्य पुस्तक का विषय आकर्षक है। लिखने की शैली अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं हृदयग्राही है।

भाषा परिष्कृत और प्रांजल है। परन्तु विवेच्य-वस्तु के लघु आकार से पाठक के मन में एक प्रकार की अतृप्ति सी बनी रहती है। प्रत्येक विषय

पर और अधिक जानना, अधिक सुनना और अधिक समझना पाठक की स्वभाविक प्रवृत्ति होती है। ऐसी पारस्थिति में पाठक बुभुक्षित ही अपने आपको पाता है। सुगम शैली, प्रवहमान भाषा, स्वस्थ विचारों एवं स्पष्ट दृष्टिकोणों के उल्लेखनीय समावेश को पाकर पाठक त्रुटिओं को भूल जाता है। लेखक अंग्रेजी साहित्य के विद्वान है, लेकिन लेखक की यह बहुत बड़ी खूबी है कि उन्होंने अंग्रेजियत की तनिक भी गंध इसमें नहीं आने दी है। सभी गल-पच कर एकाकार। अलोचक की बहुत बड़ी जीत तो यही है।

यह निर्विवाद सत्य है कि यह कृति साहित्यिक आलोचना के इतिहास में रूप-विधान सम्बन्धी मौलिक उद्भावनाओं तथा परम्परा पालन को समझने के लिये एक ठोस आधार प्रदान करती है जिसकी परमावश्यकता एक स्वस्थ दृष्टिकोण वाले अलोचक को सदैव हुआ करती है।

—नवराष्ट्र

"प्राथमिकी": एक मौलिक, सर्वाङ्गीण रचना

वीरेन्द्र श्रीवास्तव, एम. ए. (हिन्दी एवं संस्कृत), डी. लिट्.,

—'पुलिस में भी ईमानदार, सच्चे, कर्त्तव्यनिष्ठ, मस्तिष्क-वाले व्यक्ति की आवश्यकता है, उतनी ही प्रखर, जितनी किसी महकमे में 'प्राथमिकी' के लेखक श्री बदरीनारायण सिनहा का यह निवेदन जहां उनके अपने महकमे में प्रतिष्ठित व्यक्तित्व का अनजाने उद्घाटन है वहां आलोचना के क्षेत्र में भी अपने प्रतिमान का स्थापन है। वस्तुतः उन्होंने इस आदर्श को अपनी रचना में पूरी तरह निभाया है और समकालीन हिन्दी साहित्य का तटस्थ अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे हिन्दी पाठकों के लिए धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने थोड़े में बहुत कुछ कह दिया है और समकालीन हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं और प्रवृतियों का रमणीय विश्लेषणात्मक परिचय दे दिया है। किसी भी विधा-काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी गद्य, समीक्षा इत्यादि की चिन्तनधारा और उसकी विशिष्ट उपलब्धियों का सम्यक आकलन कर दिया है। लेखक ने सुची-परिगमन पद्धति का सहारा न लेकर प्रतिनिधि कृतियों के माध्यम से अपने विषय को स्पष्ट किया है। परिणामतः पाठक उलझन में न पड़ कर सुलझे हुए विचारों और निष्कर्षों को आत्मसात करने की क्षमता पा लेता है।

पुलिस महकमे में आने से पूर्व श्री सिनहा अंग्रेजी के प्रध्यापक रहे हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य की प्रवृतियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है, यह निर्विवाद है। उस प्रभाव के सूत्रों को ललित करने और उन्हें विशद करने में लेखक ने कमाल हासिल किया है। वे अग्रेजी के चकाचौंध में भी नहीं पड़े हैं। उन्हें अपने भारतीय साहित्य की अविच्छिन्न मूल धारा का भी पूरा ध्यान है। अतएव 'प्राथमिकी अपने आप में एक मौलिक सर्वाङ्गीण सुसम्वद्ध आलोचनात्मक रचना बन पाई हैं, न कि इधर उधर के बिखरे अपरिपक्व और असंयत विचारों की उद्धरणी।

आशा है हिन्दी जगत इस उदीयमान समर्थ और निष्पक्ष आलोचक का अभिनन्दन करेगा। उनकी अन्य रचनाओं के स्वागत की उत्सुकता से प्रतीक्षा रहेगी।

प्राथमिकी

—श्री राघवेन्द्र नारायण सिंह, राज्यमंत्री, बिहार सरकार

हिन्दी साहित्य में स्वस्थ आलोचनात्मक कृतियों का पिछले एक-दशक से सर्वथा अभाव रहा है। निःसन्देह एक लम्बे अर्से तक अध्ययन चिन्तन एवं मनन के उपरान्त "प्राथमिकी" के लेखक श्री बदरी नारायण सिनहा ने अपनी प्रथम कृति के माध्यम से उक्त अभाव को दूर किया है।

"प्राथमिकी" भारतीय संस्कृति की परम्परा पर आधारित मौलिक विचारों की देन है। लेखक के मौलिक विचारों में नये दृष्टिकोण का पुट मिलता है।

"प्राथमिकी" में भाषा की सरलता एवं शैली की नवीनता के साथ-साथ शब्द-शिल्प प्रचुर मात्रा मे उभर कर आया है।

श्री सिनहा ने "प्राथमिकी" के माध्यम से ऐसे साहित्यकारों के साहित्य का उचित मूल्याकन कर साहित्य-जगत के समक्ष उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है जिनके नाम तो जन-साधारण तक परिव्याप्त हैं किन्तु उनकी कृतियां आलोचना क्षेत्र में उपेक्षित रही हैं जैसे हिन्दी के लोकप्रिय गीतकार स्व० गोपाल सिंह नेपाली एवं समर्थ कवि श्री केदार नाथ मिश्र प्रभात के नाम उल्लेखनीय हैं। कहना न होगा कि यद्यपि नेपाली जी एवं प्रभात जी हिन्दी साहित्याकाश के प्रबल नक्षत्रों में से हैं किन्तु आज तक उनकी कृतियों का स्वतंत्र रूप से किसी आलोचक द्वारा उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सका है। वस्तुतः श्री सिनहा ने अपनी कलम चलाकर इस दिशा में एक अभिनव आदर्श उपस्थित किया है।

आरक्षी विभाग में रहकर श्री सिनहा द्वारा हिन्दी की जो सेवाएँ की जा रही हैं, सच्चे अर्थ में वह अभूतपूर्व कही जा सकती हैं।

"प्राथमिकी" पढ़ने के बाद उसके लेखक श्री सिनहा की सबसे बड़ी विशेषता यह देखने को मिली कि उन्होंने अपने को प्रभाव एवं वाद के घेरे से सदैव ऊँचा बनाये रखने का प्रयास किया है, वस्तुतः इससे लेखक की साहित्यिक निष्ठा, ईमानदारी एवं निर्भीकता का परिचय मिलता है।

श्री सिनहा से हिन्दी-जगत को बहुत बड़ी संभावनाएँ हैं, मैं श्री सिनहा के उज्ज्वल भविष्य की कामना चाहता हूँ ;

प्राथमिकी

—श्री मुरारी प्रसाद सिंह

हिन्दी-साहित्य के सर्वतोमुखी विकास का तटस्थ अध्ययन प्रस्तुत पुस्तक का प्रतिपाद्य है। सन् १९४४ ई० से २६ जनवरी, १९५० ई० की अवधि में प्रकाशित प्रमुख साहित्यिक कृतियों के आधार पर हिन्दी साहित्य की नवीन संभावनाओं को प्रकाश में लाना ही प्राथमिकी के लेखक का अभीष्ट प्रतीत होता है। प्राथमिकी के दो खण्ड प्रमुख हैं, प्रथम में काव्य, उपन्यास और कहानियां, दूसरे में नाटक, गद्य एवं समीक्षा आदि पर लेखक के सुलझे हुए विचार द्रष्टव्य हैं।

लेखक ने प्रारम्भ में ही इस भ्रान्ति का निराकरण किया है कि न तो इसे साहित्य का इतिहास जैसा कोई ग्रन्थ समझा जाय और न कोई गुटिका, जिसमें केवल विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सामग्रियां रहती हैं। लेखक की मान्यता है कि तटस्थता समीक्षा का प्रधान गुण होती है। समीक्षा-विषयक कतिपय सूक्तियां इस ग्रन्थ की एक अपनी विशेषता है क्योंकि उनके धरातल पर ही लेखक ने अन्य समीक्षकों को तौला है तथा अपना संतुलन भी बनाए रखा है। सचमुच प्राथमिकी के लेखक में न तो दुर्वासा का आक्रोश मिलता है और न विश्वामित्र का दम्भ, बल्कि इनकी संपूर्ण रचना में वशिष्ट की सहृदयता की छाप दिखाई पड़ती है, जो वस्तुतः इनका काव्य है। भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिन्दी के प्रति लेखक की बद्धमूल आस्थाएं एवं आशावादिता प्रस्तुत पुस्तक में स्थान-स्थान पर मुखरित हो उठी हैं।

हिन्दी साहित्य की समीक्षा लिखने की प्रेरणा कदाचित् लेखक ने हठधर्मियों के इसी आक्षेप से ली है कि हिन्दी साहित्य न समृद्ध है और न सक्षम। स्वयं अङ्गरेजी के विद्वान एवं कुछ काल तक प्राध्यापक रहते हुए भी लेखक नहीं मानते कि हिन्दी-साहित्य, विशेषतः गद्य की उन्नति के मूल में केवल पाश्चात्य-साहित्य का अंधानुकरण हो रहा है।

कहानीकारों में जैनेन्द्र और अज्ञेय को अधिक महत्व मिला है, वे इसके सर्वथा अधिकारी भी हैं। पहाड़ी और सेंगर की कहानियों के विवेचन के साथ ही कहानी-कला, उसकी सूक्ष्म होकर पच्चीकारी और विराट संकेत की विस्तृत व्याख्या भी उल्लेखनीय है।

नाटकों में बेनीपुरी जी के "अम्बपाली" और अश्क के "कैद और उड़ान" की बारीकियों को लेखक ने भली भांति निरखा-परखा है। सेठ गोविन्द दास, वृन्दावन लाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र एवं उदयशंकर भट्ट की सम-सामयिक रचनाओं का भी लेखा-जोखा बड़ी सफाई से प्रस्तुत किया गया है। गद्यकारों में विशेषत: विहार के लेखकों का, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, यथेष्ट मूल्यांकन किया गया है। लेखक द्वारा यह एक आवश्यक अभाव की पूर्ति हुई है।

प्राथमिकी के लेखक ने ग्रंथ के अन्य दो भागों के प्रकाशन के बारे में हिन्दी-संसार को जो जानकारी दी है उससे हमारी बहुत-सारी आशाएँ बँधी हैं। वस्तुत: १९५० ई० से आगे का हिन्दी-साहित्य भारतीय गणतंत्र की अनेक उपलब्धियों में एक है और उसका तटस्थ अध्ययन प्रस्तुत करना गुरुतर कार्य होगा, जिसको श्री बदरी नारायण सिनहा अपनी मँजी हुई लेखनी से कुशलतापूर्वक निभायेंगे, इसमें संदेह नहीं।

प्राथमिकी के खण्ड-तीन को लेखक ने किशोर-कृति की संज्ञा दी है यदि वैसा मान लें तो प्रस्तुत पुस्तक को उनकी प्रौढ़ कृति मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी—पाठकों को तो कतई नहीं।

भाषा के संबंध में लेखक ने अपने ये उद्‌गार प्रकट किये हैं :—

जबतक मानव-वृन्द अपने लिए एक सार्वभौम भाषा नहीं बना लें, तबतक हिन्दी की भाषा टकसाल रहे। लेखक ने बेनीपुरी जी के "अंबपाली" से एक उदाहरण देकर बताया है कि भाषा की ग्रहण-शक्ति कितनी चमत्कारपूर्ण

कहानीकारों में जैनेन्द्र और अज्ञेय को अधिक महत्व मिला है, वे इसके सर्वथा अधिकारी भी हैं। पहाड़ी और सेंगर की कहानियों के विवेचन के साथ ही कहानी-कला, उसकी सूक्ष्म होकर पच्चीकारी और विराट संकेत की विस्तृत व्याख्या भी उल्लेखनीय है।

नाटकों में बेनीपुरी जी के "अम्बपाली" और अश्क के "कैद और उड़ान" की बारीकियों को लेखक ने भली भांति निरखा-परखा है। सेठ गोविन्द दास, वृन्दावन लाल वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र एवं उदयशंकर भट्ट की सम-सामयिक रचनाओं का भी लेखा-जोखा बड़ी सफाई से प्रस्तुत किया गया है। गद्यकारों में विशेषत: विहार के लेखकों का, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, यथेष्ट मूल्यांकन किया गया है। लेखक द्वारा यह एक आवश्यक अभाव की पूर्ति हुई है।

प्राथमिकी के लेखक ने ग्रंथ के अन्य दो भागों के प्रकाशन के बारे में हिन्दी-संसार को जो जानकारी दी है उससे हमारी बहुत-सारी आशाएँ बँधी हैं। वस्तुत: १९५० ई० से आगे का हिन्दी-साहित्य भारतीय गणतंत्र की अनेक उपलब्धियों में एक है और उसका तटस्थ अध्ययन प्रस्तुत करना गुरुतर कार्य होगा, जिसको श्री बदरी नारायण सिनहा अपनी मँजी हुई लेखनी से कुशलतापूर्वक निभायेंगे, इसमें संदेह नहीं।

प्राथमिकी के खण्ड-तीन को लेखक ने किशोर-कृति की संज्ञा दी है यदि वैसा मान लें तो प्रस्तुत पुस्तक को उनकी प्रौढ़ कृति मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी—पाठकों को तो कतई नहीं।

भाषा के संबंध में लेखक ने अपने ये उद्‌गार प्रकट किये हैं :—

जबतक मानव-वृन्द अपने लिए एक सार्वभौम भाषा नहीं बना लें, तबतक हिन्दी की भाषा टकसाल रहे। लेखक ने बेनीपुरी जी के "अंबपाली" से एक उदाहरण देकर बताया है कि भाषा की ग्रहण-शक्ति कितनी चमत्कारपूर्ण

होती है। लेखक की शैली प्रभावपूर्ण है और इनके शब्द सोने और चांदी के सिक्कों की तरह टन्-टन् बोलते हैं। भाषा अन्तःकरण का वहिर्करण है—ऐसा तो लेखक ने स्वयं माना है। आलोचना साहित्य के गुरु-गंभीर रूप के सर्वथा योग्य बोल रहो हैं क्योंकि इनकी मान्यता है कि पहले बोल के मोल थे और अब मोल के बोल हैं।

आलोचक ग्रंथ

प्राथमिकी

श्री बदरीनारायण सिनहा, प्रकाशक : श्री गनपत प्रकाशन, पटना

श्री बदरी नारायण सिनहा के समीक्षा-ग्रंथ 'प्राथमिकी' में सन् १९४४ से २६ जनवरी १९५० की अवधि में प्रकाशित कतिपय प्रमुख कृतियों की आलोचना तथा इस युग के विभिन्न साहित्य रूपों का सामान्य विवेचन किया गया है। पुस्तक तीन खंडों में विभक्त है। प्रथय खंड में निर्दिष्ट अवधि में प्रकाशित छः प्रमुख काव्य-कृतियों (उत्तरा, नवीन, संवर्त्त, कुरुक्षेत्र नये पत्ते, इत्यलम) की तटस्थ समीक्षा और सामयिक उपन्यास व कहानी का निरूपण है, द्वितीय खंड में नाटक व समीक्षा-साहित्य का विवेचन है, और तीसरे खंड में लेखक के पाँच निबन्धों (नवीन कवियों की प्रवृत्ति, हिन्दी की अतुकान्त कविता, कवि : एक उपदेशक, हिन्दी का ग्रामोन्मुखी साहित्य, आधुनिक हिन्दी कहानियाँ) का संग्रह है।

इन तीन खंडों में समीक्षक का स्वर केवल प्रशंसात्मक नहीं है, वरन उपलब्धि के साथ-साथ अभावों का स्पष्ट उल्लेख करने में उसने संकोच नहीं किया। शिविरमुक्त विवेचन इस पुस्तक की उल्लेखनीय विशेषता है। एकाध अपवाद को छोड़कर हिन्दी-साहित्य की उपलब्धि को पाश्चात्य साहित्य के दर्पन में देखने का अविवेक भी लेखक ने नहीं किया। विवेचन में शास्त्र की जटिल शब्दावली का प्रयोग न करके सहज अभिव्यक्ति का ध्यान रखा गया है और शैली की दृष्टि से बँधे-बँधाए ढाँचे के उपयोग करने की अपेक्षा विभिन्न कृतियों के प्रतिपाद्य का विश्लेषण करते हुए सामयिक प्रवृत्तियों का आकलन किया गया है। इसी

कारण विवेचन में कहानी-जैसी सरसता आ गई है । वस्तुतः हिन्दी-साहित्य में देश की स्वतंत्रता से तीन -चार वर्ष पूर्व और कुछ वर्ष बाद तक जिन प्रवृत्तियों की प्रमुखता रही है उन्हें समझने में "प्राथमिकी" से काफी सहायता मिलती है : इस श्रम के लिए श्री सिनहा निश्चय ही बधाई के पात्र हैं । विवेचन बहुत सन्तुलित और निष्पक्ष है ।

प्रस्तुत कृति की भाषा में एक कमी पाठक को प्रायः खटकती है । लेखक ने अनेक वाक्यों में सहायक क्रिया 'है' का प्रयोग नहीं किया है । कहीं कहीं तो तो ऐसा वाक्य विन्यास ही सहीं समीक्षा की गम्भीरता कों भंग कर देता है—"इनकी गणना उपन्यास या कहानी में ही की जा सकती, कारण, इनकी कथा होती कल्पना का इन्द्रजाल । "(पृष्ठ-संख्या ३८, खंड दो) आशा है श्री सिनहा इस दिशा मे ध्यान देंगे ।

मैं इस महत्वपूर्ण समीक्षा ग्रन्थ का हिन्दी जगत में स्वागत करता हूं ।

हिन्दी-विभाग
पी. जी. डी. ए. वी. कालेज, पहाड़गंज
नई दिल्ली ।

रमेश गुप्त
३सी/१४ रोहतक रोड
करौल बाग, दिल्ली—५

प्राथमिकी

श्री हरिनन्दन चौधरी, एम० ए०, डिप० एड०, साहित्यरत्न

प्राथमिकी:—प्रथम दृष्टि में लगा कि हिन्दी साहित्य के मूल भूत तत्त्वों के विवेचन-विश्लेषण का प्रयास है। किन्तु पुस्तक के आमुख में ही लेखक ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। वे साहित्य-व्यवसायी नहीं हैं। प्रबल साहित्यानुराग ने राष्ट्र-भारती की आकुल पगध्वनि सुनी है और भावातिरेक में अपने उच्छ्वासों को चिन्तन की कड़ियों में गूँथा है। प्रस्तुत रचना हिन्दी साहित्य के पिछले दो दशकों के कुछ विशिष्ट उपलब्धियों पर स्वतंत्र चिंतन है। लेखक की विशिष्टता यह है कि उन्होंने आलोचना के विहित मानों का आधार नहीं लिया है। जीवन-मूल्यों की कसौटी पर वे कलाकृतियों को कसना नहीं चाहते। कला स्वयं जीवन से अनुस्यूत है। समय रेत पर अनुभूतियों के जो कमनीय कुसुम बिखर जाते हैं उनके रंग रूप को परखे, उनकी कोमल पंखूड़ियों को सहलाये, उनकी निसर्ग-छवि को देखे; और रसानुभूति को अभिव्यक्ति देदे—आलोचक का यह प्रकृत धर्म है। वैसे तो कला प्रतिबद्धता से विच्छिन्न होकर नहीं चल सकती। किन्तु प्रतिबद्धता युग का विखंडित सत्य नहीं है। आलोचकों की सीमाएँ यह होती है कि वे वादों के संकीर्ण दायरे में कला की प्रतिबद्धता के इस विखंडित आदर्श को ही ग्रहण कर पाते हैं। फलतः साहित्यालोचन रूढ़ियों से आक्रान्त हो जाता है।

प्राथमिकी के लेखक श्री बद्रीनारायण सिन्हा की एक स्वतंत्र चिन्तन धारा है। साहित्य की परम्परायुक्त परिभाषाओं ने उनकी दृष्टि की सीमाएँ निर्धारित नहीं की। साहित्यिक वादों ने उनके जीवन मूल्यों को विकृत-संकुचित भी नहीं किया। आनासक्त भाव से युग की उभड़ती पृष्ठभूमि पर उन्होंने कुछ कलाकृतियों को देखा है और उनके अन्तर्निहित सौन्दर्य्य का विचार

और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों में—आकलन कर डाला है। 'उत्तरा' से 'इत्यलम्' हिन्दी काव्य का क्रमविकास खोजने में आपको निराशा होगी। 'प्रेमचन्द' से 'रेणु' तक शायद आपको कई महत्वपूर्ण हस्ताक्षर न मिलें। लेखक का यह लक्ष्य भी नहीं है। उसकी पैनी विश्लेषक दृष्टि में तो कुछ सशक्त रचनाएँ आ गयी हैं और उन्होंने उनके प्रेरक तत्त्वों का विश्लेषण कर चिंतन की नयी दिशाओं का संकेत किया है। काव्य में इन्होंने युगीनता के उद्‌बोधक स्वर को पहचानकर युग के शाश्वत तत्त्वों का भी शोध करना चाहा है। उपन्यास में विशृंखलित भौतिकवाद और यौन-लालसा की कृतियों को स्वीकारते हुए भी इन्होंने परिणति की स्वस्थ मंगलमयता को देखना चाहा है। कहानी और नाटक का चित्रपट अपेक्षाकृत छोटा है। उन सभी प्रवृत्तियों का उल्लेख नहीं हो पाया है जिनके प्रेरणा-स्रोत में नाटक स्मृत्याभास के रूप में और कथा अकथा के रूप में परिणत होती जा रही है। सामयिक चर्चा में लेखक ने आधुनिक हिन्दी कवियों की प्रवृत्तियाँ, हिन्दी की अतुकान्त कविता, हिन्दी का ग्रामोन्मुखी साहित्य, तथा आधुनिक हिन्दी कहानियों पर दृष्टि पात किया है। इस विवेचन में अधिक गंभीरता नहीं आ पायी है। प्रेरणा और पद्धति इन्होंने देखी है, शिल्प नहीं देखा। शिल्प के परिपेक्ष्य में इनकी विवेचना निखर सकती है।

समग्रतः प्राथमिकी आलोचना के क्षेत्र में एक नवीन दिशा का संकेत है। श्री बद्रीनारायण सिन्हा का अध्ययन गहन है, चिंतन स्वस्थ। सुस्पष्ट विचारों को बड़ी ही लचीली और सशक्त भाषा में इन्होंने अभिव्यक्त किया है। आलोचना को वादमुक्त कर वैयक्तिक भावानुभूति के स्तर पर प्रतिष्ठत करने का यह प्रयास श्लाघनीय है। हिन्दी साहित्य-क्षितिज पर इस तत्त्वान्वेषी प्रतिभा से बड़ी संभावनाएँ हैं,

---

द्वितीय खण्ड

कथा साहित्य

मैना के उलझ गये डैना और चार कहानियाँ

—श्री मती गिरिजा गुप्त, एम-ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न

"मैना के उलझ गये डैना" कृति एक उपन्यास और चार लघु कहानियों का संग्रह है। संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है कि थोड़े में अधिक कह जाने की मानो ये कथायें सत सैया के वे दोहरे हों, जो देखने में छोटे किन्तु घाव गंभीर करने वाले होते हैं।

'मैना के उलझ गये डैना' शीर्षक उपन्यास में जहाँ एक ओर नारी जीवन की झांकी है वहीं आधुनिक सभ्यता व्यवस्था में कटु व्यंग भी है। साधारण रूप से किसी भी देश-काल व श्रेणी की नारी के जीवन की यही कहानी होती है कि बचपन लाड़-प्यार, शोखी, नजाकत में बीतता है। माँ, बाप व बेटी ने बड़े-बड़े अरमान सँजोये। लेकिन सत्य के कठोर धरातल का स्पर्श होते ही स्वप्न धरे रह गये। जो वर एवं घर मिले बेटी ने स्वीकार किया। उन्मुक्त पंछी सदृश कल्पना के पंखों पर उड़नेवाली बेटी ने सत्य से समझौता किया और डैना उलझे मैना के समान अपने शिशुओं के भरण-पोषण व भविष्य-चिंता में व्यस्त हो अपना व्यक्तिगत सुख-दुख भूल गयी।

उपन्यास का प्लाट पुराना चिरपरिचित होते हुए भी चिरंतन सत्य की तरह नवीन है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में प्लाट और भी नवीन लगने लगा है। चुटीले व्यंग एवं भाषा कथा को मर्मस्पर्शी व भावबोधक बनाने में समर्थ हैं। भाषा में विदेशी प्रचलित शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषागत उदारता परिलक्षित होती है।

उपन्यास का आकार बहुत छोटा होने से उपन्यास-कला के छ तत्वों में से किसी का विकास पूर्ण तरीके से नहीं हो पाया है, मैना का चरित्र अवश्य कुछ उभरा है, फिर भी औपन्यासिक विचार की यह नूतन प्रणाली है, जो संघर्ष के इस युग में पाठकों को कुछ हद तक आकृष्ट कर सकती है। इसमें समाज का जो यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है, वह प्रशंसनीय है। अंग्रेजों की नौकरशाही किस प्रकार अब भी हमारे समाज के गले का हार बनी है लेखक ने इसे अपने चुटीले व्यंग द्वारा अच्छा दर्शाया है। हमारे प्राचीन युग की परम्परा, जिसमें गुरु का पूर्ण सम्मान था इस नौकर शाही के ऊपर बलिदान हो गया है। आज साहित्यिक वर्ग किस प्रकार एक चपरासी से भी उपेक्षित समझा जाता हैं, लेखक ने इस ओर बार-बार हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जिसके परिष्कार की नितान्त आवश्यकता है। सिनहा जी की ये पंक्तियाँ बरबस हमारा ध्यान खींचती हैं—"यह खराब हैं समस्तरीय डिप्टी को चपरासी हैं, प्रोफेसर को नही ; तीन पतली फाइलों को ढोने के लिए कड़ियल आवा झावा पहने, चपरासी ... ... मोटी-मोटी किताबों को प्रोफेसर स्वयं ढोता है, ढोयेगा नहीं ! प्रोफेसर को और क्या चाहिए, ऋषि मुनि तो वन में रहते थे, कंद मूल खाते थे, वल्कल पहनते थे।"

उपन्यास के समान ही चारों कहानियाँ भी लघु समाज पर व्यंग करने वाली जीवन की एक एक सतह को उभार कर रखने वाली हैं। प्रथम कहानी 'रूपा' में नायक शिवेन्द्र अपनी युवावस्था में क्षणभर के लिए युवती हरिजन बालिका रूपा के प्रति आकर्षित होता है ; किन्तु फिर उसका सहज विश्वास, भोला रूप देखकर संभल जाता है। उसे अपनी काव्य-प्रतिमा नहीं बहन मान लेता है, जो उसका जन्मगत स्वभाव था। वह चाहकर भी उससे विवाह नहीं कर पाता, जैसा समाज में प्रायः देखा जाता है कि आदर्श एक ओर रक्खा रह जाता है और यथार्थ कुछ और ही रंग ला देता है। दोनों की अपने-अपने समाज में शादी हो जाती है और दोनों अपने जीवन में व्यस्त हो जाते हैं।

"चार आँखें दो तरीरी" कहानी भी असफल प्रेम की लघु कहानी है। नायक शिवेन्द्र, शिक्षित व धनी, गाँव की एक गरीब किशोरी से चार आँखें करता है तभी दो आँखें की तरेरी उन पर गड़ती है। बाप से आरजू करता है—किशोरी से शादी की। किन्तु पुत्र को दहेज के लालच में माँ बाप भला कैसे एक गरीब घर की बेटी को बहू बनाते। शादी नहीं होती, किन्तु उसकी याद रह जाती है और कठोर समाज उन्हें सत्य के धरातल पर खड़ा कर देता है, दो भिन्न परिवारों में शादी रचाकर, समाज की स्वार्थ -परता पर तीखा करारा थप्पड़ मारा है लेखक ने प्रस्तुत कहानी द्वारा।

"सौरी नो थैंकयू" में दो अपरिचित इंटरव्यू देने जाते हैं—युवक व युवती। बातें होती है। अनजाने ही उनमें कुछ सिहरन, कंपन व आकर्षण उत्पन्न होते हैं। नियत स्थान पर गाड़ी आती है और 'सौरी नो थैंकयू' कह कर अलग हो जाते हैं। सब कुछ कह कर भी लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता, इसी में लेखक की सफलता है।

'ताजी हवा ताजे ख्याल" एक ही काम से किस प्रकार ऊब कर व्यक्ति दूसरे काम की टोह में भटकता हैं। किन्तु हार-थक कर फिर उसे अपना ही काम संभालना पड़ता है। यही इस कहानी का सार है। अफसरी से ऊब कर नायक शिवेन्द्र समाज-सेवा, हरिजन उद्धार, सदाचार क्लब खोलने आदि का कई काम सोचता है किन्तु घर आने पर उसे अपना देखना पड़ता है। यही समाज है, यही सत्य है। साथ ही इसी में शक्ति भी है। लेखक ने इसे बड़ी-बारीकी से इस कहानी में चित्रित किया है।

हिन्दी में उपन्यास कहानी का जो हिस्सा साहित्य में रह गया है, उसके उल्लेख के साथ ही प्रस्तुत विवेचन को समाप्त करना उचित हो गया। आज हमारे नगरों के जीवन में सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष जितना तीव्र है, उतना अभी गाँवों में नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नये-पुराने, दोनों युग के सैकड़ों संस्करण परस्पर युद्धरत है। जीवन अधिक

"चार आँखें दो तरीरी" कहानी भी असफल प्रेम की लघु कहानी है। नायक शिवेन्द्र, शिक्षित व धनी, गाँव की एक गरीब किशोरी से चार आँखें करता है तभी दो आँखें की तरेरी उन पर गड़ती है। बाप से आरजू करता है—किशोरी से शादी की। किन्तु पुत्र को दहेज के लालच में माँ बाप भला कैसे एक गरीब घर की बेटी को बहू बनाते। शादी नहीं होती, किन्तु उसकी याद रह जाती है और कठोर समाज उन्हें सत्य के धरातल पर खड़ा कर देता है, दो भिन्न परिवारों में शादी रचाकर, समाज की स्वार्थ -परता पर तीखा करारा थप्पड़ मारा है लेखक ने प्रस्तुत कहानी द्वारा।

"सौरी नो थैंकयू" में दो अपरिचित इंटरव्यू देने जाते हैं—युवक व युवती। बातें होती है। अनजाने ही उनमें कुछ सिहरन, कंपन व आकर्षण उत्पन्न होते हैं। नियत स्थान पर गाड़ी आती है और 'सौरी नो थैंकयू' कह कर अलग हो जाते हैं। सब कुछ कह कर भी लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता, इसी में लेखक की सफलता है।

'ताजी हवा ताजे ख्याल" एक ही काम से किस प्रकार ऊब कर व्यक्ति दूसरे काम की टोह में भटकता हैं। किन्तु हार-थक कर फिर उसे अपना ही काम संभालना पड़ता है। यही इस कहानी का सार है। अफसरी से ऊब कर नायक शिवेन्द्र समाज-सेवा, हरिजन उद्धार, सदाचार क्लब खोलने आदि का कई काम सोचता है किन्तु घर आने पर उसे अपना देखना पड़ता है। यही समाज है, यही सत्य है। साथ ही इसी में शक्ति भी है। लेखक ने इसे बड़ी-बारीकी से इस कहानी में चित्रित किया है।

हिन्दी में उपन्यास कहानी का जो हिस्सा साहित्य में रह गया है, उसके उल्लेख के साथ ही प्रस्तुत विवेचन को समाप्त करना उचित हो गया। आज हमारे नगरों के जीवन में सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष जितना तीव्र है, उतना अभी गाँवों में नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नये-पुराने, दोनों युग के सैकड़ों संस्करण परस्पर युद्धरत है। जीवन अधिक

व्यस्त और मशीनी होता जा रहा है, बाहर और मनमें सैकड़ों तरह के प्रभाव एक दूसरे से टकरा रहे हैं और इस संघर्ष की स्थिति में वही कथाकार जीवन का द्रष्टा कहा जा सकता है, जो इन परस्पर विरोधी तत्वों में सही, स्वस्थ और कल्याणकारी तत्वों को वर मान कर उन्हें विकसित करता है। श्री सिनहा नेअपने एक उपन्यास और चार कहानियों में इसका निर्वाह किया है, आधुनिक कहानीकार के लिए कहानी अभिव्यक्ति होती है, मात्र घटना नहीं। श्री सिनहा की कहानियों में अनुभूतियों का विस्तार तो हुआ ही है, साथ ही वह दृष्टि की नवीनता में, सांस्कृतिक-परिप्रेक्ष्य में गहरी भी हुई है। "ताजी हवा: ताजे ख़याल" की सवेदना एक स्थिति का स्वीकार थी, आगे चलकर स्थिति की सचेतनता बढ़ी और साथ ही सक्रियता भी। कोई स्थिति, वास्तव में तब तक इतनी उत्कट नहीं लगती जब तक वह स्थिति-मात्र रहती है ; लेकिन जब मनुष्य उसके प्रति सचेत और सक्रिय हो जाता है, तब उत्कट मनोवैज्ञानिक समस्या आ जाती है। 'मैना के उलझ गए डैना' तथा अन्य चार कहानियों में उससे उबरने की सक्रियता और अकुलाहट तो है ही—साथ ही बदली परिस्थितियों में नयी संभावनाएँ भी विकासमान और मूर्त्त हो रही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री बदरी नारायण सिनहा मीडियाकर या अध कचरे लेखक के रूप में उपस्थित नहीं हुए हैं। वे अपने युग के चालू मुहावरे इसलिए स्वीकार करते हैं कि उनके उपन्यास में आधुनिकता का आभास हो। यहाँ तक कि उन्होंने उपन्यास या कहानी-कला के घिसे पिटे बुनियादी सिद्धान्तों को भी जगह-जगह चुनौती दी है। नई कहानियों के नाम पर आज साहित्य में जो धमा-चौकड़ी मची हुई है, उससे स्पष्टतः विपरीत इनकी कहानियाँ या यह उपन्यास सोद्देश्य है। दर असल श्री सिनहा ने 'मैना के उलझ गये डैना' में बेहद सतर्कता बरती है और अधिक कहा है। अँग्रेजी में डॉ० एच० लारेन्स या जर्मन में फ्रान्स काफ्का इसी प्रकार के युगान्तकारी रचनाकार हो चुके हैं। जेम्स

ज्वायस और हक्सले भी युगान्तकारी रचनाकार हुए हैं। जेम्स ज्वायस और हक्सले की तरह श्री सिनहा ने भी अपने युग की समाज-व्यवस्था की बड़ी आलोचना की है।

जीवन की सतह के भीतर प्रविष्ट होकर उसकी आंतरिक परतों को उद्धरित करने के फलस्वरूप इसके कथाकार का पैटर्न बहुत बदला हुआ है। कहानियों की बनावट, वस्तु, कथा तत्व, प्रतीक, मोटिव परिवर्तित दिखाये गये है; जिससे जीवन की जटिलता को संपूर्ण वे अपने में समेटे हैं! आपका शब्द-भण्डार और अभिव्यंजना-शक्ति काफी समृद्ध है—विशेषतः नगरों में प्रयुक्त होनेवाली तगड़ी शब्दावली द्वारा शब्द प्रयोग के रंग ढ़ंग में अर्थात् बुनावट टेक्सचर—प्राकृति, बिंब सांकेतिकता आदि को नये संदर्भ दिये गये हैं, नये वाक्य संदर्भ दिये गये हैं, वाक्य-विन्यास भी बदला हुआ है। पुराना रूप लगभग टूट चुका है!

श्री सिनहा नयी कहानी के विशिष्ट कथाकार हैं, जिन्होंने नये वस्तु अङ्ग ही नहीं निर्वाह की एक विशिष्ट भंगिमा और कहानी को एक कलात्मक सार्थकता प्रदान की है। उनकी कहानियाँ जीवन की संयमी अनुभूतियाँ हैं—व्यक्ति परक होते हुए भी उनकी विशिष्ट सामाजिकता है। वे पुराने कहानीकारों की तरह भाव विचार या 'आइडिया' की कहानियां नहीं लिखते हैं। इनमें भोगे गए जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। भोगा हुआ जीवन सामाजिक सन्दर्भ पा गया है। लेखक में कल के सफल कथाकार की झलक मिलती है, अपनी विशिष्ट भाषा-शैली और टैक्सचर की बदौलत उन्होंने आज के अच्छे कथाकारों में अपने को परिगणित करा ही लिया है; भावी कलवाले सफल कथाकारों में भी उन्होंने अपने को शामिल कर लिया है।

—०००—

मैना के उलझ गये डैना

—डॉ० बेचन

"मैना के उलझ गये डैना"। "मैना के उलझ गेलई डैना"। कथा-पुस्तक का प्रकाशन १६ सितम्बर, १९६५ को हुआ। इसमें एक उपन्यास और चार कहानियों का संकलन है। पुस्तक में मात्र ४१ पृष्ठ हैं। "मैना के उलझ गये डैना" उपन्यास मात्र ११ पृष्ठों का है। हिन्दी साहित्य में ही नहीं, संभवतः विश्व साहित्य में भी इतनी छोटी और ऐसी रचना अब तक उपन्यास कहकर प्रचारित नहीं की गई है। उपन्यास की नायिका "मैना" है, जो उसका शायद वास्तविक नाम नहीं है। मैना के चारों ओर ही कथा के सूत्र बिखरते हैं और अन्त में वे मैना की सिमटन के साथ सिमटते हैं। "मैना" के जजबात भारतीय मध्यवर्ग, विशेष रूप से स्वातंत्र्योत्तर मध्यवर्ग की जीती जागती तस्वीर है। इस वर्ग को कोई भी तस्वीर मुखर होने से बाकी नहीं रह पाती। एक बड़े उपन्यास या उपन्यास कही जाने वाली रचनाओं में जो गुण अपेक्षित हैं वे इस छोटी रचना में दृष्टिगोचर होते हैं। अलग-अलग सात अध्यायों में मैना के जीवन के सात आयाम बद्ध हैं। भ्रमवश इसे लम्बी कहानी कहना भी सर्वथा भ्रामक होगा। क्योंकि इसमें कहानी का चरम बिन्दु (क्लाइमेक्स) और कहानीपन नहीं है, अपितु औपन्यासिक प्रभाव है। उपन्यास को विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसमें उपन्यास के सारे लक्षण, उपलक्षण एवं प्रभाव मौजूद हैं। आज के विकशित कथा सिल्प के युग में उपन्यास और कहानी की पहचान उसकी व्यापकता और लघुता से नहीं की जा सकती। मूल्यांकन का आधार केवल उसका "प्रभाव" होता है। इस दृष्टि से भा इसका प्रभाव अक्षुण्ण है। प्रेमचंदीय औपन्यासिक मानदंडों से इसका मूल्यांकन करने पर भूल होगी। अब तक हिन्दी में प्रेमचंदीय मानदंडों को आधार मानकर ही उपन्यासों का सृजन हुआ। कहानियों में कुछ शिल्पगत प्रयोग हुए हैं अवश्य

जिन्हें स्वीकृति भी मिली है। उपन्यासों के प्रयोग स्वीकृत नहीं हो पाये, फलत: परम्परागत शैली पर ही उपन्यासों की रचना हुई है। सन् १९५० के बाद भी प्रकाशित हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास यथा "झूठा सच", "भूले बिसरे चित्र", "बून्द और समुद्र", "जहाज का पंछी" आदि इसके उदाहरण हैं। सन् १९६० के हिन्दी कथाकारों के बीच प्रयोग कर्त्ताओं के रूप में बदरी नारायण सिनहा का स्थान सुरक्षित रहेगा। मात्र प्रयोग और शैली की दृष्टि से भी इनकी रचनाओं का उसी ऊँचाई पर रखना होगा, जिस ऊँचाई पर आज रेणु, भीष्म, साहनी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू, भंडारी मार्कण्डेय, अमरकांत, निर्मल वर्मा आदि की रचनाओं को हिन्दी में स्वीकारा जा रहा है।

इस उपन्यास की रचना के द्वारा लेखक ने कथा साहित्य को एक मोड़ दिया है। इस कृति के द्वारा समीक्षा के परम्परागत मानदंडों में परिवर्त्तन करना आवश्यक हो जायगा। इसलिए इसके मूल्यांकन के लिए नया मानदण्ड चाहिए। अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि नयी औपन्यासिक रचना का एक नमूना पेश किया गया है। श्री सिनहा की इस कथा रचना के अध्ययन-मनन से सहज में यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रत्येक मौलिक रचना आलोचना के सिद्धान्तों को बदल देती है।

रूपा, चार आँखें : दो तरीरी, "सौरी, नो, थैंक यू", "ताजी हवा, ताजे खयाल", संग्रह की चार कहानियाँ हैं। ये सभी कहानियाँ और उपन्यास २२ जुलाई से २७ जुलाई तक लिखी गई हैं। यानी एक सिटिंग, एक बैठक, एक क्षण, एक मन, एक स्थिति, एक वातावरण में केवल एक नायक की कथा ही इस रचना के मन-प्राण हैं। यह क्षण सौ घंटे, सौ मिनिट और सौ दिनों का भी हो सकता है। शर्त यही है कि उस विशेष क्षण अर्थात् एक ही क्षण का बीज सभी क्षण में विद्यमान रहना चाहिए तभी एक क्षण की एक-सूत्रता और सार्थकता है। इस शर्त को ये रचनाएँ पूरी करती हैं, अतएव इनका संकलन एक स्वतन्त्र अथवा एक लघुकाय संग्रह में किये जाने की सार्थकता है। इस क्षण की सार्थकता को लेखक अपने "प्राक्कथन" की पंक्तियों से प्रमाणित

करता है। इसीलिए इन रचनाओं को पढ़ने के लिए भी एक क्षण, एक मन:स्थिति और एक बैठक चाहिए, तभी इन कहानियों की आत्मा को समझा जा सकता है। श्री सिनहा की प्रत्येक रचना के साथ यह खूबी है कि उसके पढ़ने के लिए एक निश्चित क्षण और मन चाहिए। अथवा इन रचनाओं को समझने में भूल हो सकती है। सभी रचनाएँ जीवन-पीर से पगी हैं। सभी कथाओं में करुणा, वेदना और दुःख की त्रिवेणी बहती नजर आ रही है। लेखक ने अपने हृदय की अगाध संवेदना इनमें भरी है। ऐसा लगता है कि ये सारी कहानियाँ भोगी हुई हैं। इसीलिये इनमें इतनी रागात्मकता, अनुभूति की सघनता, मार्मिकता और स्पृहणीय पीड़ा का उद्वेलन अनुभूत होता है जिससे सहज में ही सारी कहानी में एक क्षण, एक मन, एक नायक, एक लेखक, एक शैली और एक भोक्ता दिखाई पड़ता है, यह भोक्ता लेखक भी हो सकता है, शिवेन्द्र भी हो सकता है, अजीत तो हो ही सकता है, आज का कोई भी संभ्रान्त मध्यवर्गीय भारतीय भी हो सकता है, जिसका लगाव शहर, गांव, अञ्चल, कसबा, अफसर, प्रोफेसर आदि से। शहर गांव की जिन्दगी, अथवा दोनों के जीवन का सापेक्ष धरातल कहानी का आधार है। इसीलिए इस पुस्तक की नायिकाएं रूपा, मैना, लैली, धनिया आदि सबों की है, हो सकती है। लेखक स्वयं इसकी पुष्टि करता है—"कहानी विलक्षण नहीं है, पर है लाखों करोड़ों की आप बीती भी।" यही इस पुस्तक का कमाल है। समाज का हर व्यक्ति, हर वर्ग अपनी-अपनी तस्वीर इसमें देख सकता है। लेखक ने "कुदरत का आइना" दिखाया है। इन्हीं गुणों के कारण सारी कहानियाँ जीवन-रस से ओतप्रोत है। तब लेखक का यह कथन ठीक ही लगता है कि ये कहानियां क्या है, "आत्मकथा की टुकड़ी, संस्मरण की राशि, कल्पना की बेटी, लतीफा, कहकहा, स्केच, रेखाचित्र" आदि। इसी क्रम में लेखक ने कहानी की परिभाषा भी दी है—"कहानी का विधान नया-नया होता है। प्रत्येक कहानी का रवैया अपना होता है, लतीफा, कहकहा, संस्मरण, स्केच, रेखाचित्र, सब इसके ही शृंगार हैं।" लेखक का निष्कर्ष यह है कि किसी भी

मौलिक कथा को कहानी के रचना-विधान की किसी निश्चित सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। चूंकि दुनियां के हर इंसान की मूलप्रवृत्तियाँ प्रायः एक प्रकार की रहती हुई भी, इंसान एक दूसरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार दुनियां की प्रत्येक कहानी का रचना-विधान एक प्रकार का होकर भी दुनियां की हर कहानी एक दूसरे से अलग होती हैं। प्रायः युग प्रवर्तिका प्रतिनिधि कहानियां पूर्ववर्त्ती सभी कहानियों से अवश्य ही कुछ भिन्न होती है।

श्री सिनहा ने अपनी कहानियों के इस गुर को समझा है और ऐसा लगता है कि वे अपनी कहानियों का स्वयं मूल्यांकन करते हुए स्पष्ट उदघोषण करते हैं कि इन कहानियों का विधान नया-नया है, सर्वथा नया, नयी कहानियों में भी नया प्रयोग। "रूपा" कहानी की भूमिका आधुनिक हिन्दी कहानी की 'कहानी' से प्रारंभ होती है, जिसमें लेखक ने अपनी सृजन-प्रेरणा का भी स्पष्ट उल्लेख किया है—"कहानी नहीं लिखता हूँ कहानी घटित होते देखता हूं। कहानी पढ़ता हूँ। कहानी सुनता हुँ। पेशे से बे-कहानी की कहानी भी गढ़ देता हूं, स्थल देखकर, गवाहों को सुनकर, कड़ियाँ जोड़कर"। इन पंक्तियों से श्री सिनहा के कहानीकार व्यक्तित्व का सुलझा हुआ परिचय मिलता है—लेखक का क्षेत्र आलोचना है, "प्राथमिकी" उनका "शास्त्र" ग्रंथ है, इसीलिए उनका कहानी नहीं लिखना सार्थक है। जिन्दगी स्वयं एक कहानी है, लेकिन उसे घटित होते वही देख सकता है जिसकी दृष्टि बड़ी पैनी है, सचेतन लेखक अपनी इस विशेषता का कायल है। लेखक एक पुलिस कर्मी है, भारतीय पुलिस सेवा का वरीय सदस्य, इसलिए रोज-रोज उसे नयी नयी वे कहानियाँ सुनने को भी मिलती हैं जहाँ सर जमीन देखकर, गवाहों के बयान सुनकर और उनकी ऋंखला जोड़कर कहानी गढ़नी भी होती है।

लेखक ने नयी प्रेम कहानियों की विशेषताओं पर टिप्पणी करते हुए बताया है कि आज की प्रेम कहानियों की नायिकाएं ऐसी परकीया होती हैं

जो विवाहिता है। "यदि अपनी ही रिश्तेवाली हुई तो फिर क्या कहने।" आज की हिन्दी कहानियाँ इस दोष से आक्रान्त हैं।

आगे चलकर कहानी के शिल्प पर विचार हुआ है। आज की हिन्दी कहानी का शिल्प मनोविज्ञान पर आधारित है, अक्सर उसमें "क्लेश बैंक" अथवा "स्ट्रीम आफ कनससनेश" [चेतना प्रवाह पद्धति] का का संयोजन किया गया है। आधुनिक जीवन की तंगी कहानी का विषय बनती है। लेखक इस "तंगी" से "तंग" है। शहरी कहानीकारों की तरह कहानी में अंग्रेजी शब्दों को बिठलाने वाले या आंचलिकता के नाम पर कहानी को शब्दों का आजायबघर बनाने वाले लेखकों की गति-विधि से भी लेखक अवगत है। श्री सिनहा का द्वन्द्व आज के नये कथाकारों का ऐसा द्वन्द्व है जो नयी कहानियों के उदय का लक्षणहै। श्री सिनहा ने अपनी कहानियों में इसलिए नयापन लाया है। इनकी कहानियाँ न तो शहरी कथा का पिछलगुआ बनती है और न आंचलिकता का फैशनेबुल अनुकरण ही है। ये कहानियाँ सर्वथा नये शिल्प को लेकर उभरी हैं, जिनमें जीवन के यथार्थ क्षण को कहानियों में उतारा गया है या उतारने का प्रयास किया गया है। लेखक ने अनजाने ही इन सभी कहानियों की व्याख्या करते हुए "सौरी" "नौ, थैंक यू" में लिखा है—"विगत तीन दिनों से कहानी लिख रहा हूँ, सुना रहा हूँ, रूपा, मैना, लैली की कहानी। इनमें सब कुछ है, पर वह नहीं है, वह जो ड्रोल स्टोरीज में है या यशपाल की "कभी न ऐसा पाया आनन्द" वाली कहानी में। अरी, यह वह तो प्रति घड़ी, प्रतिदिन घटता है।" कहानियों में कोई पूर्वाग्रह, या किसी मतवाद का आग्रह नहीं है। इन कहानियों को कला के लिए कला का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। किन्तु मात्र पकृतवादी दृष्टिकोण भी उनमें नहीं है बल्कि भारतीय जीवनादर्शों की आस्था का स्वर इसमें सुनाई पड़ता है। इसीलिए मैना, रूपा, लैली और धनियाँ तक अपने आदर्श का निर्वाह करती है। मैना को देखिए—"मैना, गगन में उड़ान भरने वाली नहीं, धरती पर फुदकने वाली नन्हें—मुन्ने को आशीष, दाना भविष्य प्रदान करनेवाले

घोंसले को अपनी आभा से, चहक से, रोशन करनेवाली मैना, सोचती हैं, यही जीवन है, तिनकों से महल रच देना, जगती के लिए होनहार, विरवान को तैयार करना, ऐसी धरोहर को संजोना, जिससे जन, भू, जीवन सरस हो जाये, मंगलमय, शिवेन्द्र को कल्याण मिले, सास, देवर, ननद, घर, दाई, पड़ोसी को आनन्द और आराम, अपनी थकान से भी तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि यही जगत-नीड़ है, यही बाग सब्ज है, यही टहनी है जिसमें डैने उलझ गये तो क्या, पल्लव, फूल, खिले हैं, पर जो क्षणों को, काल को मुखरित कर देंगे।

टहनी पर मैना, सीता वन में, यशोदा नंदन में,
वीर दुर्गादास की पत्नी रन में, 'मां के मन-मन में,

मैना गाती है, गीत न सिर्फ तीता न मीठा।"

केवल "सोरी", "नो थैंक यू", "की लड़की सेक्स और जीवन में वैसा ही संबंध मानती हैं जैसा संबंध "वाटर" और "ग्लास" का होता है। लेकिन यह याद रखना होगा कि यह लड़की लाओंस की है। फिर भी लेखक ने कहानी के व्यक्तीकरण में आदर्श की पूरी रक्षा की है और उसे अश्लील होने से बचाया है। पारस्परिक यौन संबंधों को भी लेखक ने ३६ और ६३ की संख्या की सांकेतिकता से व्यक्त किया है। यह लेखक की सबसे बड़ी कलात्मक सफलता है।

रचना विधान की दृष्टि से "रूपा" संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। है। "सोरी" "नो थैंक यू" का चौथा स्थान है। दूसरा स्थान "चार आँखें : दो तरीरी" अर्थात् "लैली' की कहानी को दिया जा सकता है और तीसरे नम्बर में "ताजीहवा ताजे ख्याल" है।

इस कृति के संबंध में प्रकाशकी वक्तव्य में उचित ही लिखा गया है कहानी या उपन्यास के क्षेत्र में लेखक का पदार्पण एक घटना है। इस क्षेत्र में भी लेखक पथप्रदर्शक सिद्ध हुए हैं; लेखक में अत्यधिक संभावनाएँ हैं। उनके विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार अब तक उनका विस्फोट नहीं हुआ है। आगे भी उन्हें लिखना है। इस विलक्षण उपलब्धि के लिए मैं लेखक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

मैना के उलझ गए डैना : एक अध्ययन

प्रो० श्री शारदा कांत ठाकुर, एम० ए०

श्री बदरी नारायण सिनहा हिन्दी की बहुत दिनों से सेवा कर रहे हैं। व्यक्तिगत सम्पर्क में रहने के कारण भी, मैंने लेखक को बहुधा कहते सुना है कि वे प्रधानतः एक आलोचक हैं। इसलिए यह सोचना ठीक है कि "मैना.... डैना" का लिखा जाना एक इत्तफाक है। एक बार फिर यह मान लेना पड़ेगा कि कभी कभी साहित्य का सृजन किया नहीं जाता। हो जाता है। जब ऐसा इत्तफाक होने को आता है तब वह लेखक की किसी कठिनाई की ओर नहीं देखता। इसका उदाहरण एकमात्र श्री बदरीनारायण सिनहाजी ही नहीं हैं जो एक युग से अधिक अर्से से अखिल भारतीय पुलीस सेवा में सफलतापूर्वक कार्यरत होते हुए भी, 'प्राथमिकी' सदृश हिंदी में महत्वपूर्ण आलोचना की पुस्तक लिखसके हैं, (कतिपय अन्य रचनाओं की बात छोड़ दें)। अंगरेजी साहित्य में कभी न भूलाजा सकने वाला उपन्यासकार सामरसेठ तथा रूसी साहित्यजगत का महान लेखक चेकव आदि भी सिद्ध करते हैं कि अस्पताल में मरीजों के बीच व्यस्त डाक्टर (जो वे थे) अपनी मजबूरियों से ऊपर उठते हैं और सफल साहित्य के प्रणेता बनते हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध बंगाली लेखक श्री वनफूल के विचार भी स्मरण हो आते हैं कि समाज को उन्नति की दिशा में एक पग भी आगे ले जाने वाला, उसे आवांछनीय तत्वों से मुक्त रखनेवाला पुलीस अधिकारी तो यूं भी एक साहित्य सेवी है, व्यापक अर्थों में एक साहित्यकार है। श्री वनफूल के ये विचार "मैना के उलट गये डैना" के प्रकाशन समोरोह के अवसर पर व्यक्त हुऐ थे।

"मैना....डैना" बारह पत्रों का एक लघु उपन्यास है इसका आकार है छोटा परन्तु पाट है समुद्र जैसा और फैलाव है सर्वव्यापी। लेखक ने प्राक्कथन में कहा भी है कि यह उपन्यास फरमाईस को आजमाइस है।

अध्याय १ में उपन्यास की नायिका मैना वर्णित है। एक ही पन्ने का यह वर्णन एक दम लघु है परन्तु फिर भी एकदम विस्तृत। प्रतिभाशाली लेखक ने हिन्दी भाषा में एक अनूठा, व्यक्तिगत प्रयोग किया है और हिन्दी भाषा की सम्भावनाओं को एक नयी दिशा दी है। दो पंक्तियां है। "मैना को नीड़ चाहिए, हसीना को एक नौजवान, हसरतें पूरी करने वाला, पर समाज बड़ा बेहूदा होता है। अपनी-अपनी मौज, अपनी-अपनी चाह।"

मैना का वर्णन समाज का वर्णन है। मानव चरित्र का विश्लेषण है। भाषा में कुछ ऐसी विशेषता है कि पाठकों को हर पंक्ति के साथ रुक जाने, चिंतनशील हो जाने, एवं विचारों में डूब जाने की प्रवृत्ति होती है। इसी अध्याय में नहीं, लेखक की भाषा में ही जैसे कोई जादू है। पाठकों को कुछेक शब्दों में ही चिंतनशील बना देने की अद्भुत क्षमता है बदरी बाबू की भाषा में।

दूसरा अध्याय मैना के विवाह से संबंधित है दो-दो चार-चार शब्दों का एक वाक्य और हर वाक्य में विचारों का एक चित्र, भावनाओं का एक संसार।

तीसरा अध्याय छोटा सा है। वाक्य के अंत में पूर्ण विराम सा महत्व लिए। उपन्यास की घटनाओं में पहली घटना का अंत। उपन्यास की नायिका मैना एक प्रोफेसर शिवेन्द्र की हो जाती है।

चौथा अध्याय अपेक्षाकृत लम्बा है। लेखक ने उपन्यासकार की स्वतंत्रता का समुचित उपयोग करते हुए। समाज पर, प्रोफेसरों की दिक्कतों पर, सामाजिक जीवन की गलतियों पर विचारोत्तेजक टिप्पणियां की हैं।

पांचवां अध्याय शिवेन्द्र की एक और सफलता की सूचना देता है। शिवेन्द्र अब उच्च स्तरीय सेवा की परीक्षा में सफल हो जाता है, मैना गद् गद् होजाती है।

छठा अध्याय बस दो पंक्तियों का है। कोई घटना नहीं, कोई विशेष सूचना नहीं। समय बीत रहा है। मैना अब माँ बन गयी है।

पुस्तक का अंतिम अध्याय फिर मैना को लेकर आरंभ होता है। पुस्तक के आरंभ की मैना, बीच की मैना और अब अंत की मैना व्यक्तित्व की तीन सीढ़ियों से गुजरती है। अब वह दुनिया को समझ चुकी है, सभी श्रेणी के लोगों से परिचित हो चुकी है पुस्तक की अंतिम पंक्ति "मैना गाती है गीता"—मैना की उपलब्धियों का परिचय देती है।

पुस्तक मैना और शिवेन्द्र के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पन्नों को प्रतिविम्बित करती है। समाज की कुछ आवश्यक बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र के सभी तरह से यह पुस्तक एक 'क्रांति' है। हिन्दी पाठकों के लिये एक अभिनव मनोरंजन का साधन होते हुए, हिन्दी के लेखकों के लिये एक प्ररेणा-स्त्रोत है—भाषा की सम्भावनाओं के क्षेत्र में, विचारों को निर्भीकता पूर्वक कहने की दिशा में तथा उपन्यासों के उस नवीन रूप के अर्थ में, जो "मैना.....डैना" की अपनी विशेषता है।

(आलोचनात्मक अध्ययन)

मैंना के उलझ गये डैना

प्राचार्य श्रीयुत् शिवबालक राय

'मैंना के उलझ गए डैना' मुश्किल से दस पृष्ठों का एक उपन्यास है उपन्यास के क्षेत्र में यह एक नवीन रूप-विधान है। जब शुरू-शुरू में दो चार पृष्ठों की कहानियां निकलो होंगी तो पाठकों को अचरज हुआ होगा भला कहानियां भी इतनी छोटी हो सकती हैं। अब तो जैसा सुनते हैं कि विश्व की एक सर्वश्रेष्ठ कहानी केवल आठ दस पंक्तियों में ही है। उसमें लेखक ने मातृ-हृदय के अनोखे प्यार को चित्रित किया है। दस पृष्ठों का उपन्यास; यह भी एक हिन्दी साहित्य के लिए नई घटना है। कहानी जीवन के किसी क्षण को, किसी अनुभूति को मूर्त्त रूप में ढालती है। कहानी गुलदस्ता है तो उपन्यास वनस्थली। उपन्यास में जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण होता है। साथ ही एक जीवन दर्शन भी; लेकिन इधर कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यास निकले हैं जिनमें केवल एक व्यक्ति के मन की तरंगों का सैकड़ों पृष्ठों में चित्रण होता है और वास्तविक जगत की घटनाएं वहां एक भी नहीं घटित होती। उपन्यास में मनोविज्ञान की गहराई या जीवन दर्शन या चरित्र चित्रण या सत्य की खोज होती है। इस उपन्यास में लेखक ने एक नायिका के वैवाहिक जीवन की पूर्णता का चित्र अंकित किया है। प्रत्येक अध्याय चाहे वह चार पांच पंक्तियों का ही क्यों न हो, जीवन के एक अध्याय की पूर्णता की सूचना देता है। इस उपन्यास के अध्याय जीवन के ही अध्याय हैं। इसमें घटनाओं की चहल-पहल नहीं। मन को एक सरल रेखा किसी बिन्दु से भटकती है और वह जीवन समुद्र केसम्मुख विराम प्राप्त करती है।

इसमें लेखक ने मैंना की कहानी सात अध्यायों में कही है। एक आधुनिका के मन में विवाह को लेकर किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और साथ ही

उसके दम्पत्य जीवन की परिणति किस रूप में होती है, इसका चित्रण किया गया है। इसमें कहीं संवाद नहीं है। संवाद के अभाव में इसमें तेज और दीप्ति नहीं आ सकी है। कहीं न कहीं चाहे कल्पना में ही संवाद चाहिए था। लेकिन यह तो कहानी है। लेखक मैंना के जीवन की कुछ तरंगों को स्थापित कर रहा है। फिर भी शिवेन्द्र और मैंना में एक अध्याय में जीवन के किसी दर्शन को लेकर संवाद चाहिए था। इससे दर्शन की उदात्तता से जीवन उदात्त हो सकता है। लेखक ने उदात्त की अपेक्षा सौंदर्य की अनुभूति को इसमें स्थान दिया है। सरल सुगम जीवन को एक ललित कल्पना। लेखक अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल हुआ है। इस उपन्यास की एक और विशेषता है कि इसमें आधुनिक जीवन पर—प्रोफेसर और अफसर के जीवन पर तीखा प्रकाश भी पड़ता है। कुछ ही शब्दों में आधुनिक अफसरी को लेखक ने उसके—कटु यथार्थ के साथ अनायास अंकित कर दिया है। अंगरेजी और हिंदी अफसरी का 'खिचड़ी' रूप इसमें देखिए।

बावरची कहां मिलता है, मिलता है ठहरता नहीं अंगरेज साहिल ढूंढता है, अब लोग बेसा खाते भी नहीं हैं, सुबह में पूरी, दिन में भात-दाल और रात में रोटी-दाल, कहने को लंच, डीनर केवल नाम की शान है। अफसरी पाने की कुंजी पर भी व्यंग्य है। "एक के श्वसुर के चाचा के काका का बहनोई मिनिस्टर था। दूसरे का जातीय अफसर.....पैरवी में सफल हुआ।" इस तरह की पंक्तियां आधुनिक समाज में भौतिक उन्नति पर करारी चोट करती है। लेखक ने हल्के-हल्के ढ़ंग से बुर्जुआ जीवन की झूठी शान का पर्दाफाश किया है। इस प्रकार इस उपन्यास में कटु यथार्थ का अच्छा चित्रण हुआ है। प्रोफेसर की कीमत एक दरोगा जी के सामने भी कुछ नहीं है। चपरासी उसे भी चाहिए चाहे लंगड़ा ही क्यों न हो। लेखक ने 'पूल' की पोल खोल दी है और यहां तक कह डाला 'अफसरशाही को नई सामंतशाही'—बाहर तो बाहर सही। अफसर के भीतरी जीवन को भी एक पंक्ति के द्वारा छू दिया है। 'चपरासी की बीबी से तो और अच्छा—काबू में रहेगी।' इतनी बातें सातवें अध्याय में

आई हैं। इस अध्याय का गुण यह है कि अफसरशाही का असली रूप हमारे सामने अंकित होता है। लेखक ने कहा है—आधुनिकीकरण, पश्चिमी करण, तंगीकरण का जमाना है—स्पष्टीकरण का नहीं।' यह वाक्य अपने आप में अत्यन्त सशक्त है। इनमें 'तंगीकरण' शब्द कई प्रकार के संकेतों से परिपूर्ण है। लेखक ने इस अध्याय में शासन की अजीब व्यवस्था पर प्रकाश डाला है और वह शुभकामना करता है कि जमींदारी की तरह अफसरी के भी प्राण जाने चाहिए। बजबजाती, सलामबाजी आदि—नए-नए शब्द लेखक ने चालू किए हैं। इस प्रकार इन्होंने अपनी थैली में कुछ शब्दों का इस तरह प्रयोग किया है जो अफसरी जीवन के एक एक पहलू का राज खोलते हैं। लेकिन इसमें मैना के हृदय का स्पन्दन मौन हो गया है। प्रधान हो गयी है—अफसरी की कटु आलोचना। लेकिन यह आलोचना शैली की सजीवता के कारण अखरती नहीं है। लेकिन इसकी मात्रा कुछ अधिक हो गई है। लेखक का कथाकार रूप गौण और आलोचक रूप मुखर हो गया है। इन भावनाओं को लेखक प्रकाश के, नियत घटनाओं के, संकेत से चित्रित कर सकता था; इनमें कला को और घटना को अति सूक्ष्म रेखा का मात्रसंकेत है। जैसे अध्याय सात का प्रथम पैरा 'कोठी में जो वह लड़की थी उसका लगाव किसी से हो गया .....फूल दाई अपनी लड़की के लिए फटी साड़ी.....यदि लेखक इसी प्रकार के कलात्मक संकेतों द्वारा—जो भाव तरंगें मैना के मन में उठती हैं—अफसरशाही का चित्रण करता तो वह और प्रभावोत्पादक होता। लेकिन एक बात है—सातवें अध्याय की पहली पंक्ति में ही लेखक ने कहा है—'मैना दुनियां समझने लगी है।' सो इसमें दुनिया की हकीकत का जबरदस्त चित्रण हुआ है और इस अध्याय का अंत एक मंगलमय-कामना में होता है। लेखक उस कटु सत्य से हमारा ध्यान हटाकर जीवन के मंगल पदों की ओर ले आता है और इसी से उपन्यास की समाप्ति हो जाती है। उपन्यास का अंत लोक संग्रह की भावना से होता है। इसलिए पाठक को जीने की प्रेरणा मिलती है। कांटों के बीच फूल खिलते हैं मैना के डैने 'उलझ गए तो क्या' पल्लव फूल खिले हैं, पर क्षणों को, काल को, मुखरित कर देंगे। यहां 'क्षण' व्यक्तिगत

जीवन को प्रतीक जैसा लगता है और काल जीवन की समग्रता का प्रतीक है। यानी लेखक चाहता है कि व्यक्ति और समाज का जीवन मंगलमय हो। यही सौंदर्य की अनुभूति है। जैसा पंत ने कहा हैं—

कांटों में कुटिल भरी हो
इस जटिल जगत की डाली
इस में ही तो जीवन के
पल्लव की पूली लाली

लेखक ने यहां जगत—नीड़ शब्द का भी प्रयोग किया है। इस उपन्यास की अंतिम पंक्ति है—'मैना गाती है गीत, न सिर्फ तीता न मीठा।' यह पंक्ति अर्थ पूर्ण है। इससे पाठक की कल्पना को प्रेरणा मिली है। पाठक अनुभव करता है कि जीवन का गीत न केवल सुखमय है न केवल दुःखमय। तीता, मीठा इसी भाव को व्यक्त करते हैं। सुख-दुखमय जीवन की अनुभूति ही मैना की गीता है और 'गाती है'—इसका आशय यह है कि व्यक्ति सुख-दुःख के जगत में रहते हुए भी जीवन को आनन्द में परिणत कर सकता है। क्यों कि आनन्द मन की वह दशा है जो दुःख के क्षणों में भी उपलब्ध हो सकता है, इस प्रकार इसे हम उपन्यास का संदेश या लेखक का जीवन दर्शन कह सकते हैं। उपन्यास में हम जिस जीवन दर्शन की अपेक्षा करते हैं वह यहां कम से कम शब्दों में अत्यन्त संकेतात्मक शैली में अभिव्यक्त हो गया है। इसलिए इस रचना को उपन्यास मानने में एतराज नहीं होना चाहिए। लेकिन यह जीवन की एक झांकी हुई। एक मंगल कामना मात्र है। यह मंगल कामना घटनाओं के, मनोभावनाओं के, संघर्षण से परिस्फुट नहीं हुआ है। इसलिए इसमें कोमलता है, कमनीयता है। लेकिन तीव्रता और उदात्तता नहीं है। इस छोटे से फलक पर शायद यह, भावनाओं का अन्तर्द्वन्द्व, संभव भी नहीं था। हमें यह जीवन दर्शन आशीर्वाद के रूप में उपलब्ध होता है।

छठा अध्याय केवल तीन पंक्तियों का है। इसमें लेखक ने मातृ हृदय की एक वात्सल्यमयी झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है। कन्या जब मां बनती है

तभी वह अपनी सास की वत्सलता को हृदयंगम कर पाती है। वत्सलता की भावना को पूर्ण करने के लिए "बबुआ" बबुआ, को खूब जतन से नन्हें मुन्ने को मां दाना चुगाती है, आदि वाक्य व्यक्त होते है। इस अध्याय में वधू मातृ पद पर प्रतिष्ठित होती है और वह अपनी सास के हृदयगत भावों का भावन करती है। यानी कन्या माता में रूपान्तरित हो जाती है। इस प्रकार जीवन परिवर्तित और रूपान्तरित होता हुआ महासागर की ओर बढ़ता चला जाता है। तीन पंक्तियों का यह अध्याय अपने आप में पूर्ण है। इस प्रकार अध्याय का अंतिम शब्द है 'है।' और इसके पहले वाला शब्द है—'थी'। यानी अतीत स्वयं वर्तमान बन गया और दोनों मिलकर भविष्य की ओर गतिशील होते हैं। यह अन्तिम शब्द हैं—यह घोषित करता है कि कन्या के जीवन का सत्य वत्सल होना ही। जिस प्रकार कालिदास ने पार्वती के रूप यौवन को तपस्या के रूप में परिणत कर उसे निर्मल वधू हृदय प्रदान किया, उसी प्रकार यहां वह ध्वनि आती है कि रूप यौवन को मातृत्व में ही रूपान्तरित होने में उनका कल्याण है। जाया जननी बनने के लिए ही है। प्रियतम का शयन कक्ष अब शिशुओं की चहल-पहल में, आमोद-प्रमोद से मंगलमय प्रांगण में परिणत हो गया है। उरोज की सार्थकता पयोधर बनने में है। पंचम अध्याय में उद्धाम यौवन की रासलीला और हास विलास के मादक नर्तन की ओर संकेत है—

अधरों पर मधुर अधर धर
कहता मृदु स्वर में जीवन
बस एक मधुर इच्छा पर
अर्पित त्रिभुवन यौवन-धन

—पंत

इस भाव को लेखक ने चोंच में चोंच चित्र के द्वारा व्यक्त किया है। यह अनुभूति प्रणय की है। प्रेयसी और प्रियतम के आनन्द अनुराग के—मधुरतम क्षण की यह अनुभूति है। लेकिन दाम्पत्य जीवन का यह एक यौवन मात्र है।

रूप संभार को, उन्मद यौवन को मातृ क्रीड़ा में परिणत होना है। इसलिए लेखक ने छठे अध्याय में मादक शृंगार को दुग्ध सिक्त वात्सल्य में ढाल दिया है। छठे अध्याय की पहली पंक्ति 'मैना अब खुद नन्हें मुन्ने की मां है।' यह वाक्य पंचम अध्याय के हास विलास रास लीला को छू कर सात्विक बना देता है। मानो कण्व के आश्रम की शकुन्तला मरीचि के आश्रम में पहुंच चुकी है और दुष्यन्त वत्सला शकुन्तला की चरण धूलि ले रहा है। पांचवे अध्याय में लेखक ने प्रेयसी और प्रियतम के वक्तव्य द्वारा कथित रूप के फेन को हमारे सामने रखा है। इस अध्याय को सात-आठ पंक्तियों में—दोनों माधुर्यमय जीवन के, इन्द्रधनुष के—सातों रंग एक साथ खिल रहे हैं। फ्रायड ने कहा है कि सूने के हास में 'सेक्स' काम करता है। भरत मुनिने भी हास्य रस को शृंगार माना है। पंचम अध्याय में शृंगार और हास्य—इन रसों की ओर लेखक ने मार्मिक संकेत किए है। इसमें प्रोफेसर के भोले भाले जीवन पर एक व्यंग्य भी है। विद्यानुरागी प्रोफेसर विवाह के अवसर पर अपनी पत्नी की सखी सहेलियों से हंसी मजाक नहीं कर पाता था। लेकिन अफसर होते ही वह हास्य कला में विशारद हो गया है। इस ओर संकेत यह वाक्य देता है—'मगर मैना नटखट है कहती है, विवाह के समय ऐसा नहीं न थे।' मैना को सखी का एक वाक्य याद है—मर्द बिना जोक के—स्त्री बिना शौक के—असंभव ? लेखक ने यह दिखाया है कि पेशा बदलने में आदमी का स्वभाव भी बदल जाता है। गंभीर और उदार व्यक्ति अफसर हो कर फुहरवानी में शान ले सकता है। इस अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि मैना की मनोकामना पूरी हो गई है। चौथे अध्याय में—'मैना का दम छुटता है शिवेन्द्र का नहीं।' पांचवें अध्याय में वह खुलकर चहकती है और अपने पाखों में समेट कर शिवेन्द्र को कस लेती है। यहां यह दिखाया गया कि साधारण रमणी अपनी भौतिक अभिलाषा की सिद्धि में कितनी प्रसन्न हो सकती है—और साथ ही आधुनिक समाज की उस आधुनिका पर भी व्यंग्य है जो अफसर की बीवी होने में ही अपने को धन्य-धन्य समझती है। लेकिन लेखक ने इन सभी बातों को लम्बे प्रवचन द्वारा नहीं—बल्कि मैना

के दो एक उद्‌गारों और दो एक प्रतिक्रियाओं द्वारा ही व्यक्त किया है। इस प्रकार यह उपन्यास एक ओर जहां मैना के जीवन की अभिलाषाओं का अंकन करता है वहां आधुनिक समाज की शिक्षिता आधुनिका के मनोभाव को भी प्रकाश में लाता चलता है। इसलिए मैना एक व्यक्तिगत चरित न रहकर एक 'टाईप' भी हो जाती है। उपन्यास की यह सफलता है कि वह व्यक्ति की मनोभावनाओं के चित्रण में समाज के आवेदक को भी अंकित करता रहता है। लगता है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने ही आधुनिका के मनोविज्ञान को एक दूसरे ही सांचे में ढाल दिया है। मैना की तरह विश्वविद्यालय की प्रत्येक स्नातिका यह अभिलाषा करती है कि वह 'मेम साहब' बने। लेखक ने बुल डॉग चपरासी लंच, डीनर आदि का उल्लेख कर अफसरी जीवन का चित्रण किया है। रंगीन पर्दों में रहनेवाली आधुनिका अंत में एक माता ही बन जाती है। माता आधुनिका और कन्या एक स्तर पर चली आती हैं। मैना के मन में गांव में जलने वाले किरासन तेल की महक में शायद कै हो जाती है। मिट्टी से मांजी थाली में खाना उसे शुद्ध नहीं—देखिए अध्याय दो। लगता है कि ऐसा मिजाज मैना का ही नहीं है बल्कि विश्व विद्यालयों में पढ़ने वाली स्नातकोत्तर विभाग की सभी छात्राओं का ही है। मैना के इस रेखाचित्र के द्वारा लेखक ने यह दिखाया है कि गांवों की भोली-भाली बालिका नागरिक होने पर अपने ही ग्रामीण जीवन से किस प्रकार नफरत करने लगती है। इस प्रकार का उपन्यास ग्रामीण और नागरिक पद्धति के मेल से उत्पन्न नए आदमी का चित्र हमारे सामने रखने में सफल हुआ है। सौभाग्य की बात है कि यह आधुनिका मैना नन्हे मुन्ने की मां—बनने में आनंद का अनुभव करती है। जगत नीड़ में बच्चे को चना चुगाती है। लेकिन बाइसवीं शताब्दी की आधुनिका शायद माता बनने से ही इंकार कर दे।

मैना के जीवन की कहानी सरल रेखाओं पर चित्रित है। कोई उतार-चढ़ाव नहीं। कोई भीषण अन्तर्द्वन्द्व नहीं। घटनाओं का कहीं घटाटोप नहीं।

त्रों की रेल-पेल नहीं। फिर भी यह लघु उपन्यास मालकोष की तरह
न्दर है। लेखक ने उपन्यास की एक नई विधा प्रस्तुत की है। शैली में
तन अचेतन मन को एक साथ उभारने की कोशिश की है, सरल होते हुए भी
ाठक को कल्पनाशील और बुद्धि चैतन्य से ही पढ़ना पड़ता है। नए-नए
ब्दों को नए-नए अर्थों से अर्पित कर उन्हें नए सिक्के की तरह चला देना इनकी
ूरी सफलता है। शैली प्रौढ़ होते हुए भी प्रयास जन्य कहीं नहीं दीखती। यह
स प्रयोगशील उपन्यास की उत्कृष्ट सफलता है।

———

मैना के उलझ गये डैना

—प्रो० अरुण कुमार; एम० ए०,

"मैना के उलझ गये डैना" में एक उपन्यास और चार कहानियां है। लेखक ने प्राक्कथन में जोड़ दिया है—ये सभी 'अजमाइशें' है—और मेरे विचार में कहानियां विशेषकर, उपन्यास, कहानी—विधा के क्षेत्र में अजमाइशें है, प्रयोग है।

कथा—क्षेत्र में इनका प्रवेश एक घटना है, जो रूपा नामक कहानी में पूर्णतः वर्णित है, इस कहानी की कहानी में इनका कथा-क्षेत्र में पदार्पण का उल्लेख है ही, साथ ही अत्यन्त ही किस्सागोई वातावरण में, संपूर्ण कथा-साहित्य पर इनकी धारणायें साफ साफ झलकती हैं।

"मैना के उलझ गये डैना" एक प्रयोग है, आकार की दृष्टि से नहीं, विधान, शैली और कथानक की दृष्टि से। इसे उपन्यास का आकार प्राप्त नहीं है, लेकिन उपन्यास में जो एक बढती हुई जीवन-दृष्टि का बोध होता है, वह इसमें है और इसके गठन में निहित है। एक नारी के जीवन में चंचलता, ममता की तीव्रता पांच अध्यायों में उतरती है, और तम दो अध्यायों में एक एक आरोपन, एक दर्शन उभरकर आ पड़ता है। आज का तनाव-बौद्धिक और बाह्य इस छोटे से कनवस पर होकर उतरा है। समाज का कोई अंग नहीं छूटा शासकीय वर्ग, अध्यापन वर्ग, समाज-सेवा वर्ग, हर वर्ग का अन्तर्द्वन्द्व मुखर हो उठा है। आरंभ की मोह-लिप्त नायिका जीवन के सत्य को पहचान और स्वीकार लेती है—उसकी पहचान हमारी और आपकी सबों की है। बहुत ही छोटे आकार में यह उपन्यास एक सुखकर यात्रा है। जीवन को पूर्णरूप से जीने की दिशा में समुद्र जैसा—फैलाव सर्वव्यापी, पहचान सबों की" इसी कारण से इसकी औपन्यासिक आत्मा प्रबल है।

"रूपा" में कथा का मोड़ विलक्षण है। समाज का हर अंग, गांव से

शहर, अपढ़ से पढ़, धनी से निर्धन, कामुक से संयत—हर की मनोदशा यथार्थ है—परन्तु लेखक की आस्था देखने योग्य है।

"चार आंखें दो तरीरी" में एक भावना मूलक कथा है, संवेदना, मर्म को छूनेवाली। 'रूपा" और "चार आंखें दो तरीरी" में एक उल्लेखनीय अन्तर है और वह इसके शब्द-विन्यास, में—

"चार आंखें दो तरीरी"में एक वेग है, एक प्रवाह है जो पाठक को उतना ही विह्वल रखता है जितना कि आरम्भ में उसका नायक स्वयं रहता है। कहानी जैसे एक ही सांस में लिख दी गई हो, जैसे कहानीकार का यह भय, यह निराशा, उसे कहीं दम न लेने देती है।

"सारी नो, थेंक्यु" संग्रह की अन्य कहानियों से एक दम अलग है। इसमें कोई जिज्ञासा नहीं है,—बस एक अभिलाषा, पर अनुभवहीन युवक द्वारा कुछ आकस्मिक क्षणों को मुट्ठी में कस लेने की चेष्टा है—रेल के डिब्बों में दोतनहा दिलों की मुलाकात—फारमल और इनफारमल और सामीप्य का आकर्षण, अनजानेपन का भय— सवालों का जवाब, जवाबों का सवाल—यह हमलोगों के लिये एक जाना पहचाना सवाल है, जिसका जवाब कभी एक नहीं होता है वह सवाल है सेक्स।

"ताजी हवा ताजे ख्याल" में लेखक ने शिवेन्द्र को लाकर सभी कथाओं को, सिर्फ "सौरी" नो थेंक्यु" छोड़कर, एक सूत्रता दे दी है जिसमें राजनीति समाज-सेवा भावना, नई—उठती पीढ़ी, चेतना के चल-चित्रित दिग्दर्शन हैं सचाई ऐसी कि प्रचलित रिपोर्ताज,कथाएँ भी होड़ नहीं ले सकती हैं।

एक बात और। नयापन, कौतुक, कथानक में नहीं होता, निर्वाह में होता है। "प्राथमिको" के सफल सृजनकार ने इसकी स्थापना पहले ही की है, भाषा कैसी हो, एक शब्द में इन्होंने कहा है "टकसाल"। इस पुस्तक के बोल इनके शब्दों में, युग के बोल हैं, इसलिये, सरल ही नहीं, संवादीय ही नहीं बोधगम्य है, विवेक सजग करने में सक्षम, परिचित चित्रों को उतारने मेंप्रवीण।

इनके द्वारा हिन्दी संसार की एक और अनुपम देन।

मैना के उलझ गए डैना

श्री चन्द्रशेखर, प्रसाद सिंह, भूतपूर्व संसदीय स चिव, विहार सरकार

प्रिय बदरी

मुझे तुम्हारी साहित्यिक कृतियों का कोई ज्ञान नहीं था, परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि तुम्हारा "मैना के उलझ गए डैना" पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द और गौरव हुआ। हिन्दी साहित्य से मेरा सम्पर्क 'धर्मयुग' से अधिक नहीं है, इस कारण मेरे विचारों का कोई विशेष मूल्य नहीं। अपनत्व और हिन्दी साहित्य के प्रति तुम्हारे-प्रगाढ़ प्रेम से ही प्रेरित होकर तुम्हें लिख रहा हूँ। निस्सन्देह तुम्हारी शैली अपनी है। तुम्हारी यह छोटी सी रचना प्रयोग के रूप में है, फिर भी इस क्षेत्र में नये रास्ते बनाने में रोशनी का काम करेगी। प्रशंसा के योग्य है। इसकी बड़ी विशेषता brevity है, मौजूदा समाज की अधकचरी मर्यादाओं के प्रति एक तीखा व्यंग है, दवा की छोटी सी 'पिल' की शक्ल में। एक साधारण घटना के पर्दे पर सम्पूर्ण जीवन का चित्र उभर आता है। परन्तु एक बात अवश्य कहूँ। जो चित्र इस पुस्तक में उतरे हैं शिवेन्द्र के, मैना के, रूपा के, वीणा के, बहुत ही जाने पहचाने। तुमने पुस्तक परिचय में कहा है " ... ... पहचान हमारी, आपकी, सबों की।" यह पूरा सत्य है। तुम्हारी रचना समाज की प्रचलित मान्यताओं की प्रचलित आलोचनाओं की अभिव्यक्ति है। सच पूछो तो, ये मर्यादाएं निरावरण हो चुकी है, हम और तुम शायद लोकलज्जा या एक दूसरे की कमजोरियों के प्रति सहिष्णुता के कारण, चुप रहें भले ही। अपनी ग्रन्थियों को ढ़ँकने के लिये हमारा समाज नित्य नयी मर्यादाओं की चादर बुन रहा है, पर आवश्यकता है उस चादर को हटा कर झाँकने की उसमें पैबंद लगाने की नहीं, तभी हम संतुलन प्राप्त कर सकते हैं। मुझे पूरी आशा है तुम्हारा संवेदन-शील हृदय और चाकू की धार सी तेज बुद्धि समाज के इन परदों के भीतर झाँक कर भविष्य में कुछ नये चित्र प्रस्तुत करेगी।

झाँकियाँ : एक विश्लेषण

चन्द्रधर प्रसाद नन्दक्यूलियार

इन झांकियों के लेखक हैं श्री बदरी नारायण सिनहा और इस लेख का आलोच्य विषय वे कलात्मक कृतियाँ हैं जिनको लेखक ने "झाँकियाँ" की संज्ञा से अभिहित किया है।

लेखक ने स्वयं इसका परिचय अपने प्राक्कथन में इस प्रकार दिया है:—

कहानी और उपन्यास मानव वर्ग और मानव समाज की परिछाईयाँ हैं। उपन्यास एक बृहत झाँकी है, कहानी एक बिम्ब।

उपन्यास :—साहित्य और जीवन, सहित्य और मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र की नीति पर खड़ा होता है और टिका रहता है।"

आगे लेखक इन झांकियों के परिचय में कहते हैं—यह "उपन्यास है। अब तक कथानक या चरित्रों द्वारा एक-सूत्रित उपन्यास विश्व में आता रहा है, पर इसमें एक सूत्रता कथानक या चरित्र ने नहीं दी है वरन् काल और चिन्तन की अन्तर्धारा ने। बिखरे कथाकण हैं, परन्तु एक माला में जटित।"

विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास की परिभाषा की सीमाओं का विस्तार लेखक के इस नये प्रयोग के द्वारा किया गया हैं।

सतसैया के दौहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटो लगें; घाव करें गम्भीर॥

यही कमाल है इन झांकियों का।

अंगरेजों की एक सुप्रसिद्ध कहावत हैं :—

संक्षिप्तता बुद्धिमत्ता की आत्मा है। (Brevity is the soul of wit)

भाषा का चित्रात्मक होना उसकी सर्वोत्कृष्टता का परिचायक है।

संक्षिप्त होते हुए चित्रात्मकता लिये प्रभावोत्पादकता, इनकी शैली का सहज-सुलभ गुण है। और साथ ही ये श्रुति सुखद भी हैं।

इन झांकियों में से बानगी के तौर पर कुछ पंक्तियाँ यहां उद्धृत की जाती हैं ;—

"क्षुधा से पीड़ित नर-कंकाल और क्षुधा से पीड़ित नारी ! दोनो अनाड़ी होते हैं, सीधी-सीधी बात कहते हैं। कहां इस जहां में, भई !

और क्षुधा-विहीन नर, क्षुधा-विहीन नारी ! दोनों बातें टेढ़ी करते हैं।

जुही कगार पर झुरमुट की पतली आड़ में एक तो दिल जनमानुष दो युवतियों को लेकर लेटा है। मग्न है, नग्न है।

फुटपाथ पर बैठी पचीस वर्षीया दुधमुंहें को झकझोर रही है। पुलिस इस प्रकार बैठ कर भिक्षा की मांग नहीं करने देती और बगल में उन बच्चों का बाप पानवाला कहता है, "हटा दें हज़ूर इसे, बदचलन है, जवान की बहकी"।

नीचे लिखी पंक्तियों में अत्यन्त थोड़े शब्दों में आधुनिक चित्रकला की आलोचना कैसी की गयी है, आप स्वयं देखें :—

"एक हाल है। लोग कतार में हैं। अग्रिम लोग बढ़ते हैं। प्रदर्शनी लगी है, चित्रकला की। दीवार पर तस्वीर टंगी है। बच्चे को बैठी-मां द्वारा स्तन-पान कराना, मां का चेहरा नहीं है, कमर नुकीली; और दूध के घट हैं, चेहरा बच्चे का भी नहीं है, केवल एक गोल, लोथा सा। सब्जी मंडी का चित्र

है, मधुआइन की नाकों की नथें और मछलियों की आंखें, रोहु मछली है, फूल का अम्बार है, गोल-गोल। दो व्यक्तियों का प्रणय-चित्र तीन टांगों और एक मुख से ही अभिभासित। बंदूक से छोड़ी गयी स्याही की पचीकारी से तारे, बादल, आकाश चिह्नित हैं। जो भाव, मुद्रा, स्थल-प्रधान हैं, वही आकृतियां रेखाओं या आँधी, फेंकी स्याहियों द्वारा प्रदर्शित हैं, अन्य सब गायब। किशोरी की कमर या उरोज, बूढ़ों की टूटी गर्दन, हाट-बाजार का जमघट·····।"

ग्रामीण जीवन के रोजमर्रे की जिन्दगी और उनके देवता के चढ़ावा सम्बन्धी एक झांकी का शीर्षक है—'मन्ना वीर गोसाईं'। उसके ८० नहीं सिर्फ ७९ शब्दों के द्वारा जो चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है, देखिए :—

"स्त्रियां जब सन्तानवती होती है' धान की फसल जब लगती है, गांव में विवाह होता है,परदेश से पिया सकुशल लौटता है, वांछित लल्ला पाती है, या चुपके जब डायन भूत खेलाती है, कोई मड़र किसी महतो का सर कटवा लेता हैं, मुखिया पुर्नानिर्वाचित होता है, बिसवा चोर सेंध मार पाता है, महंगू कमलिनी के यहां रात बिता पाता है और बचकर निकल आता है, तब बाबा मन्ना बीर गोसाईं को मिलती है एक कबूतर की चिड़िया, शराब की बोतल और मिठाई"।

३० अध्याय हैं इस उपन्यास के यानि ३० झांकियां हैं इसमें। प्रतिपाद्य विषय में विज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, प्राणीशास्त्र, राजनीति, देश-विदेश की समस्याएं आदि के साथ ही लेखक ने साश्वत मनोभावों का पुट देकर गम्भीरतम विचारों को सरलतम शब्दों में व्यक्त कर के उन्हें सहज-सरल रूप देकर साहित्य की ऐसी सेवा की हैं जो जनतन्त्र की दृढ़ आस्था की नीति पर ही खड़ी हो सकती हैं। लेखक की प्रतिभा ने आधुनिक जीवन के प्रत्येक प्रतिपाद्य समस्या को ऐसा मंगलमय रूप दिया है जो समाज के लिये कल्याणकारी एवं व्यक्ति के लिये हितकारी है। श्रेय और प्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है।।

व्यक्ति मूलक लेखों के विश्वविख्यात लेखक श्री मोन्टेग ने लिखा है :—

"अगर मैं एसा कहूँ कि दूसरे बहुत से ऐसे लेखक हैं जो अपने पाठकों को चिन्तनार्थ इससे अधिक उर्वर वस्तु देते हैं तो यह गलत होगा अथवा किसी दूसरे लेखक ने इससे अधिक वस्तुएँ प्रसारित न की हैं। चाहे वे अच्छी हों या बुरी—किन्तु कम से कम कागज पर वस्तुओं को इतना घनीभूत रूप दिया हो तो वह भी गलत होगा।"

इन झांकियों के सम्बन्ध में उपरोक्त कथन १६ आने सही हैं।

लेखक ने इसे उपन्यास कहा है और दूसरे उपन्यासों से इसका फर्क बतलाते हुए स्वयं कहा है—" अब तक कथानक या चरित्रों द्वारा एक-सूत्रित उपन्यास विश्व में आता रहा है, पर इस में एक-सूत्रता न कथानक या चरित्र ने दी है वरन् काल और चिन्तन की अन्तर्धारा ने।"

इस कथन के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि इन कला कृतियों को उपन्यास की संज्ञा से अभिहितकर लेखक ने उपन्यास को नये रूप में ढालने का प्रयास किया है।

प्रत्येक कलाकृति स्वभावतः रूप और अन्तर्वस्तु की अपेक्षा रखती है। जैसे आत्मा और शरीर अथवा शरीर और शरीरी। लेखक ने एक प्रयोग किया है उपन्यास के शरीर पर और रूप पर।

मेरी राय है कि "झांकी" शब्द से इस प्रयोग को ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है।

नवीन प्रयोग का नाम भी यदि नया होता है तो किसी प्रकार का अन्तर नहीं रहता।

ओस-कण की कोमलता लिये प्रत्येक झांकी अपने आप में पूर्ण है और एक तस्वीर खींच कर प्रतिपाद्य विषय को उसके वास्तविक रूप में हमारे सामने उपस्थित कर देती है।

व्यक्ति मूलक लेखों के प्रसिद्ध कलाकार श्री चार्ल्स लैम्ब ने अपने लेखों के सम्बन्ध में लिखा है:—

"इन लेखों को प्राक्कथन की आवश्यकता नहीं है, ये सभी प्राक्कथन हैं। प्राक्कथन पाठकों से बातचीत के सिवा अन्य कुछ नहीं और इसके सिवा अन्य कुछ वह करता भी नहीं।"

ठीक उसी तरह इन झांकियों को प्राक्कथन की कोई आवश्यकता नहीं युग की अभिन्न चेतना से अनुप्राणित हो झांकियां पाठकों से बातचीत इतने सीधे तरीके से कर लेती हैं कि इन्हें परिचय कराने वाले शब्दों की आवश्यकता नहीं है। इन प्रयोगों का पूर्ण परिचय "झांकी" शब्द स्वयं है।

मैं समझता हूं कि साहित्यिक एवं पाठक इन 'झांकियों' के द्वारा प्रस्तुत की गयी प्रत्येक बांकी झांकी के द्रष्टा एवं स्रष्टा को अवश्य धन्यवाद देंगे।

———

तृतीय खण्ड
काव्य

अब बहु से सब जन हिताय

डॉ बेचन, एम० ए०, पी-एच० डी०

आज से लगभग डेढ़ दशक पूर्व हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा था कि "कोई श्रेष्ठतर महाकाव्य हिन्दी में अभी आने वाला है।

मुझे तो आशा है कि वह आगामी महाकाव्य महात्मा गांधी के भारतीय रंगमंच पर किए गए महान सांस्कृतिक प्रवर्त्तन का ही काव्य प्रतिरूप होगा।"

खेद की बात है कि अब तक एक भी सफल महाकाव्य, महाकाव्य कौन कहे प्रबंध-काव्य भी, उपर्युक्त भाव-भूमिको लेकर लिखा नहीं गया जिसमें इस "युग की गाथा" चित्रित हो। भारतीय इतिहास में गांधी द्वारा किये गये क्रांतिकारी कार्य सदा अविस्मरणीय रहेंगे। भारतीय चिंतन, मनन, विचार, दृष्टिकोण, प्रशासन और जीवनगत मान-मूल्यों को उन्होंने प्रभावित ही नहीं किये, उनमें आमूल परिवर्त्तन भी उनके विचारों के कारण आये। आज भी उसका असर चल रहा है और परिवर्त्तन भी हो रहा है, और होना भी बाकी है।

श्री बदरी नारायण सिनहा ने अपने काव्य "अब बहु से, सब जन हिताय" में इस युगगाथा को उतारने का प्रयत्न किया है जिसमें उन्हें शत-प्रतिशत सफलता मिली है। साहित्य रचना श्री सिनहा का पेशा नहीं है, उसमें भी काव्यरचना तो उनके साहित्य-सृजन-क्षेत्र का गौण पहलू है। श्री सिनहा मूल रूप से आलोचक हैं, समीक्षक हैं, साहित्यिक कृतियों की

तजबीज करने वाले एक जौहरी हैं। केवल अपने जौहर की बानगी और साहित्यिक प्रतिमान कुछ प्रस्तुत करने के लिए ही उन्होंने काव्य-सृजन और कथा-सृजन को महत्व दिया है, श्री सिनहा अपनी इन सीमाओं से अवगत रहते हैं और एक सचेष्ट आलोचक का दायित्व निर्वाह करते हुए "प्राक्कथ" में लिखते हैं : यह 'युग गाथा' है। ..... संस्कृत के नौ रसों के रस उतारने की क्षमता रखने वाला कवि इस गाथा में स्पन्दन भर सकता था या हिन्दी में ऐसा कवि जो एक साथ ही अपने में गुप्त की भारतीयता, माखनलाल की आत्मीयता प्रसाद, पंत की दार्शनिकता, सुकुमारिता भी, नवीन, सुभद्रा कुमारी तथा दिनकर की ओजस्विता, निराला की प्रति रचनागत अभिनवता, अज्ञेय की प्रयोगात्मकता, वर्त्तमान कवियों की वक्रता आत्मसात कर पाता, तो भी यह युग-गाथा, बहुत दृष्टियों से विगत गाथाओं से अधिक रोमांचकारिणी एवं अग्रणी, होकर पुर्णतः ध्वनित हो उठती!" श्री सिनहा ने इस काव्य की व्याख्या में आगे निर्भीक होकर स्वीकार किया है— "शैली के संबंध में सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि चूंकि मैं रोजनामचाई कवि नहीं हूँ, इसलिए मेरी वाणी में मंजी हुई कलम न हो सकती है।"

महात्मा के जीवन-दर्शन ने कवि को आकृष्ट किया है। उन्होंने स्वीकार किया हैं··· " मेरे चिंतन एवं अन्वेषण में गांधी की स्वअर्जित ज्ञान-उपलब्धियाँ विशिष्ट हैं" इसलिए कवि गांधी की इस युग-गाथा को छंदोबद्ध करने के लिए प्रेरित हुआ। आश्चर्य है कि हिन्दी का कोई भी विशिष्ट कवि गांधी की इस मार्मिक युग-गाथा से प्रभावित होकर काव्य न लिख सका, जिसकी पुष्टि आचार्य वाजपेयी के उपर्युक्त निष्कर्ष से ही हो जाती है। महान कवि के लिए केवल काव्य प्रतिमा का धनी होना ही आवश्यक नहीं हैं; काव्य-विषय की पकड़ की पैनी दृष्टि भी अपेक्षित है। खेद की बात है कि गांधी युग के किसी भी कवि, धनी कवि ने इस काव्य विषय को नहीं पहचाना। इसीलिए श्री सिनहा ने लिखा है····· "इस

गाथा को बेतुका, बेसुरा, रहने पर भी मैंने छंदों में कहा है"! सचमुच श्री सिनहा ने इस युगगाथा की मूल आत्मा को पकड़ा है। यदि श्री सिनहा के पीछे काव्य सृजन का एक पूर्व-प्रचारित परिवेश होता तो आज इस संक्षिप्त युग गाथा को "युगगीता" कहकर मान्यता मिल चुकी होती। चूँकि यह काव्य हिन्दी के उद्यान में अनजाने आये गद्यकार का लिखा हुआ है, इसीलिए इस पुष्प सुरभि को परखने में समय लग सकता है। किन्तु विश्वास है ककिालांतर में इस युग गाथा से रसिक रससिक्त अवश्य होंगें। हालांकि श्री सिनहा ने भारतीय कवियों की आत्मलघुता का परिचय देते हुए स्पष्ट रूप से कहा हैं····· "जबतक कोई उपर्युक्त गुणों वाला कवि इस गाथा को मूर्तिमान नहीं कर लेता तबतक मेरी तुकबंदियों को सहलें, इतनी ही प्रार्थना है।"

स्पष्ट है कि अब तक हिन्दी में कोई भी श्रेष्ठ महाकाव्य गाँधी के जीवन पर नहीं लिखा गया, उनकी शहादत के डेढ़ दशक बाद भी इस मार्मिक प्रसंग ने किसी भी कृती हिन्दी कवि को प्रभावित नहीं किया। हालांकि इस बीच हिन्दी में कई एक काव्य, विविध विधाओं के रूप में ही सही, दूसरे कई विषय को लेकर लिखे गये, जो भले ही हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ा सकते हैं पर युग-गाथा के चित्रण की दृष्टि से वे सर्वथा असफल हैं।

गांधी की शहादत के बाद रघुवीर शरण मित्र ने "जननायक" नाम से एक महाकाव्य १९४९ ई० में प्रकाशित करवाया, जो महात्मा गांधी की जीवनी पर आधारित है। इस महाकाव्य के एकतीस सर्गों में गांधी के क्रिया-कलापों का बड़ा ही इतिवृत्तात्मक और स्थूल चित्रण है, जिसमें काव्यत्व का दर्शन भी कहीं कहीं हो पाता हैं। युग-गाथा का वह महान प्रयास इस काव्य में नहीं है जो एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित होता है। स्व० नेहरू के जीवन पर आधारित सन् १९६५ के उतरार्द्ध में मित्र का महाकाव्य

"मानवेन्द्र" प्रकाशित हुआ है, जो "जननायक" की तरह ही एक असफल काव्य है।

सारी घटनाओं का स्थूल विवरण देना ही मानो कवि का अभिप्राय है, इसलिए घटनाओं, नामों और तिथियों से यह काव्य बोझिल हो उठा है। यही कारण है कि मित्र का यह कटु महाकाव्य किसी भी कृती आलोचक के द्वारा प्रशंसित नहीं हुआ।

श्री सिनहा के शब्दों में वस्तुतः आधुनिक युग के "महाकाव्य या प्रबंध काव्य में द्वन्द्व के निदान से ही रचना निखरती है, आरम्भ में ही नायक ज्ञानी होता हैं,पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ व्यक्ति, जिसकी छवि कवि उतारता हैं।" श्री सिनहा ने इन्हीं उपादानों से अपने महाकाव्य का संगठन किया है। इसीलिए इस काव्य में सर्वत्र सचेतन समीक्षात्मक विश्लेषण, द्वन्द्वात्मक पर्यवेक्षण, और निर्माणात्मक चित्रण को स्थान मिला है।

गांधी के जीवन पर लिखनेवाले किसी भी कवि को अब तक गांधी गाथा लिखने वाला सफल कवि नहीं कहा गया, इसके कई कारण हैं और हो सकते हैं, जिनका स्पष्टीकरण आलोचक विज्जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "बापू के तीन हत्यारे ··· ··· बच्चन, पंत, नरेन्द्र" में किया है। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करना होगा कि गाँधी के जीवन पर लिखने वाले कवियों में दिखावा अधिक है, हृदय की अनुभूति और प्रेरणा कम।

नरेन्द्र शर्मा, सुमित्रा नन्दन पंत, हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर तथा अन्यान्य हिन्दी कवियों ने भी गांधी के निधन के बाद काव्य में हाय-तोबा तो खूब मचाया पर गांधी युग की संवेदना को काव्य में व्यक्त कर सकने में वे सर्वथा असफल रहे। इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीय जागरण को अपने काव्य और साहित्य की प्रेरणा मानकर अधिकांश साहित्यकारों ने अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से रचना की। राम नरेश त्रिपाठी

मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण ठाकुर, गोपाल शरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, माखनलाल, नवीन, दिनकर आदि का इस राष्ट्रीय जागरण और कार्य से प्रत्यक्ष संबंध था, जिसे इनलोगों ने साहित्य में लाया। त्रिपाठी का "पथिक" गांधी की विचारधारा का प्रतिरूप बनकर आया। वह असहयोग आन्दोलन का नेता है, देश के लिए बलिदान भी होता है। उसका बलिदान एक अहिंसक का बलिदान है, जो बड़ा ही रोमांचकारी और अविस्मरणीय है। किन्तु ऐसी रचनाओं की सीमाएँ रहीं हैं, इससे युग की बहु-मुखी संवेदना के दर्शन नहीं हुए। यदि किसी रचना में ऐसा हुआ भी तो वह मात्र यथार्थ राजनीतिक घटनाओं का काव्यात्मक विवरण ही बन गया। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के काव्य सृजन में भी भाषागत, शिल्पगत नवीन प्रयोग तथा कलात्मक और भावात्मक सौष्ठव को अत्यधिक महत्व मिला, पर इन कवियों के लिए संभव नहीं हो सका कि वे गांधी की ज्वलन्त दार्शनिकता, प्रखर साम्यवाणी और अबाध क्रियाशीलता का तेजस्वी काव्य-प्रतिरूप प्रस्तुत कर सकते।

अपने मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए हम कहना चाहते है कि हम गांधीवाद या गाँधीनीति का खाका नहीं चाहते थे, न गांधीजी के आदर्शों अथवा उनकी जीवनी का चित्रण ही वास्तव में हमें अभीष्ट था। हम तो प्रतीक्षा करते थे उस उदात्त और तेजस्वी स्वर की, उस सरल निष्कपट और अडिग वाणी की जो हमारी राष्ट्रीय क्रियाशीलता का सच्चा काव्य प्रतिबिम्ब करती, जो वर्गों की विडम्बना से हीन, विश्व को सर्वयुगीन साम्य का संदेश दे सकती।

ऐसा करना तो उस समय तक संभव नहीं हो सका, पर उस समय राम की शक्ति पूजा, परिवर्त्तन, और कामायनी ऐसे महाकाव्य सामने आये जो भारतीय समाज को ही नहीं, समस्त विश्व समाज को हिन्दी की देन हैं। कामायनी के बाद कुरुक्षेत्र और लोकायतन, आदि काव्यों का

सृजन होता है जो क्रमशः गांधी युग को चित्रित करने की दिशा में एक प्रयत्न है।

श्री सिनहा ने गांधी युग की इसी "अन्तश्चेतना" को अपने काव्य की आधारशिला बनायी है। इस काव्य के सृजन में कवि को लगभग इक्कीस दिन लगे हैं। गांधी के जीवन काल में ही इस काव्य की प्रेरणा कवि को मिली थी, जो "कौन कुटी में जाग रहा" [१९४४] में व्यक्त है। सम्पूर्ण काव्य में संवेदनशीलता मार्मिकता, पीड़ा और ओज का दर्शन होता है। काव्य में सात आलोकों अर्थात सात सर्गों का समावेश है जिनमें "१५ अगस्त १९४७ के सन्दर्भ में नायक आये हैं, फिर सत्याग्रह, अहिंसा, यौनशमन, हरिजन प्रतिष्ठा, एक से लाख करोड़ लोगों में स्पंदन, या इनके संस्करण, उसका चिंतन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शहादत का गायन हुआ है।" बापू के देहावसान बाद बापू की बहुत सी झांकियां भी आई हैं"। अंत में काव्य को समझने के लिए प्राक्कथन, आधार, टिप्पणियों, व्याख्या, उद्धरण, नामावली आदि की योजना की गई है, जो सर्वथा नवीन प्रयोग है। इन संकेतों से काव्य का महत्व बढ़ता है और सम्पूर्ण युग इसी संक्षिप्त आकार में मुखरित हो उठता है; संक्षिप्तता ही श्री सिनहा की काव्य-शक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। श्री सिनहा का यह काव्य कौशल इलियट की काव्य-शक्ति की याद दिला देता है, जिसे उसने "वेस्टलेंड" में व्यक्त किया था। दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रकार का काव्य प्रयोग हिन्दी में अब तक कोई भी कवि नहीं कर पाया जिसमें इलियट की तटस्थता और प्रतीक का इस साहसिकता के साथ प्रयोग हो।

सम्पूर्ण काव्य मार्मिक पीड़ा और गीति-रश्मियों से ओत-प्रोत हो गया है। काव्य का प्रारम्भ ही इन पंक्तियों से होता है —

"कौन कुटी में जाग रहा
कर प्राणों की अवहेला।"

अन्त भी गीत से ही होता है :—

"कवि गीत प्रीति गाओ
आये, गये धरा पर
आदम भेद मिटाकर
मुनि, यह ध्यान लगाओ
कवि गीत प्रीति गाओ !"

प्रथम सर्ग में कवि ने गांधी के अलौकिक आदर्श, दर्शन, विचार-धारा और व्यक्तित्व का रेखा-चित्र प्रस्तुत किया है। गाँधी का व्यक्तित्व बड़ा निस्पृह था, कवि ने उनके त्याग का परिचय देते हुए लिखा है—

हम रोयें या दुलरावें
पर मुकुट नहीं पहनेगा
अपनी हस्ती मस्ती में
जन जग अभियान सजेगा। १ । ५३

उसके आश्चर्यमय, जादुई व्यक्तित्व को कवि ने बड़ी सहज अभिव्यक्ति दी है—

"यह कौन पुरुष आया है
छिटकी अद्भुत माया है
उतना ही तेज अतुल है
जितनी दुर्बल काया है। २ । ४५

भारत में स्वाधीनता का उदय, एशिया में नये जागरण का द्योतक हैं, जिससे उपनिवेशवाद के ह्रास की शुरूआत होती है। इस स्वाधीनता ने जनता में गणतंत्र का रूप देखा—

गलियों गलीच के वासी
महलों में बैठ रहे हे

१—आधुनिक साहित्य, नन्द दुलारे बाजपेयी, पृ० ३२

ईर्ष्या विरोध का उन्मूलन
जन जन के उर में मधु प्लावन । ४ । ७
वीरों का व्रत यह महागहन
यह नहीं भीत जन का रोदन
छूटे न कभी रे सदाचरण
मांगती अहिंसा अनुशासन । ४ । ८

आधुनिक और नये प्रतीकों का अधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु इन प्रतीकों के अधिक प्रयोग में कवि को सफलता मिली है। प्रतीक का एक अच्छा प्रयोग अधोलिखित पंक्तियों में हुआ है—

नारी तू अनबूझ पहेली
आदि पुरुष की आदि सहेली
प्रिया बनी तू धनी रुपहली
कवि की नित कल्पना नवेली । ४ । ११

रूप मेनका, ऋषि सुधि हर-ली
ईव हेलन बनकर खेली
मानव जीवन की रंगरेली
नारी तू अनबूझ पहेली । ४ । १२

इतने गंभीर काव्य के बीच कहीं-कहीं निश्छल हास्य और विवेक का बड़ा सुन्दर पुट है:—

रति का सम्मोहन अलबेला
बूझो कौन गुरु कौन चेला
मांग उदर की आग जिगर की
बे उम्र खेल सबने खेला । ४ । १८

चतुर्थ आलोक में गांधी के जीवन की एक महान उपलब्धि " सेक्स " पर विजय को भी काव्य का आधार बनाया गया है। फ्रायड के सेक्स

ईर्ष्या विरोध का उन्मूलन
जन जन के उर में मधु प्लावन । ४ । ७
वीरों का व्रत यह महागहन
यह नहीं भीत जन का रोदन
छूटे न कभी रे सदाचरण
मांगती अहिंसा अनुशासन । ४ । ८

आधुनिक और नये प्रतीकों का अधिक प्रयोग हुआ है, किन्तु इन प्रतीकों के अधिक प्रयोग में कवि को सफलता मिली है। प्रतीक का एक अच्छा प्रयोग अधोलिखित पंक्तियों में हुआ है—

नारी तू अनबूझ पहेली
आदि पुरुष की आदि सहेली
प्रिया बनी तू धनी रुपहली
कवि की नित कल्पना नवेली । ४ । ११

रूप मेनका, ऋषि सुधि हर-ली
ईव हेलन बनकर खेली
मानव जीवन की रंगरेली
नारी तू अनबूझ पहेली । ४ । १२

इतने गंभीर काव्य के बीच कहीं-कहीं निश्छल हास्य और विवेक का बड़ा सुन्दर पुट है:—

रति का सम्मोहन अलबेला
बूझो कौन गुरु कौन चेला
मांग उदर की आग जिगर की
बे उम्र खेल सबने खेला । ४ । १८

चतुर्थ आलोक में गांधी के जीवन की एक महान उपलब्धि " सेक्स " पर विजय को भी काव्य का आधार बनाया गया है। फ्रायड के सेक्स

संबंधी बेजोड़ मनोवैज्ञानिक खोज की भी चर्चा इस प्रसंग में कवि ने की है—

"मुनियों, कविओं, राजाओं ने
सिर्फ नहीं रे इसको झेला
गुरु फ्रायड ने जलवा देखा
वे उम्र खेल सबने खेला। ४। १७

गांधी को समझने के लिए इस युग के जिस चिंतन, मनन और अध्ययन की आवश्यकता है, उनका पूरा परिचय कवि ने दिया है। मार्क्स, लेनिन, रस्किन और फ्रायड तक की विचारधारा को गांधी की सैद्धान्तिक कसौटी पर कवि ने कसा है और अपने निष्कर्ष दिए हैं, जो इस युग-गाथा की मौलिक उपलब्धि है। कथा कहना, सुनना और लिखना कवि का उद्देश्य नहीं रहा। काव्य का अंतिम सर्ग कवि की सृजन-प्रेरणा और उसके कवि कर्म का परिचायक है, कवि कहते हैं—

"मेरे ये गीत सुधर
चूंकि न ये श्रेयस्कर
मेरे ये छंद मुखर
इसलिये कि ये वे स्वर। ७। १
मैं विनीत वे पुनीत
मैं नहीं कुशल कविवर"

उपर्युक्त दो पंक्तियाँ भारतीय कवियों की परंपरागत विनयशीलता का परिचय देती है।

इस पृथ्वी पर अमृत बरसाना और मार्मिक गीतों को मुखरित करना ही कवि का अभिप्राय हैं—

छूटे गान बे-सुरा से
फूटे सलिल इस धरा-से। १७। ६

काव्य को व्याख्या में कवि ने कहा कि "भविष्य में काव्य नहीं लिखूंगा, हां, विस्फोट हो गया है", हिन्दी संसार कवि आलोचक की इस ऊर्द्घोषणा को इस काव्य के अध्ययन, मनन के बाद शायद ही स्वीकारे। इस काव्य का विधान ही कहता है कि अभी श्री सिनहा में बहुत सारी संभावनाएँ हैं।

भगवान पुस्तकालय,
भागलपुर—२

'अब बहु से सब जन हिताय:' एक उल्लेख्य कृति

—प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह

श्री बदरी नारायण सिनहा एक आलोचक के रूप में पर्याप्त यश अर्जित कर चुके हैं। यह पुस्तक उनकी पहली काव्य- कृति हैं जो गांधी जी के जीवन को आधार बना कर लिखी गयी है। यह कृति इस बात का प्रमाण है कि भावयित्री प्रतिमा का कारयित्री प्रतिमा से कोई विरोध नहीं होता है। सच तो यह है कि भावयित्री प्रतिमा से कारयित्री प्रतिभा का विकास होता है और कारयित्री प्रतिभा से भावयित्री प्रतिभा अधिक विश्वास्य हो पाती है।

इस काव्य में बदरी नारायण सिनहा ने गाँधी जी के जीवन की करुणा को पकड़ा है। इस करुणा ने ही उनकी कविता को महिमा प्रदान की है। इस करुणा के कवित्व की पहचान में ही उसके प्रतिभा का निदर्शन मिलता है। पुस्तक में सात आलोक हैं। ये पुस्तक के सात सर्ग ही हैं। स्वयं कवि ने 'आधार' में इसकी व्याख्या यों की है—"बापू की जीवनी में सात रंग हैं, सात आलोक स्तम्भ हैं, सात चरमोत्कर्ष स्वतंत्रता का अभ्युदय परन्तु सत्ता का त्याग ; सत्याग्रह, रंग, वर्ण, अन्याय, अधर्म, अज्ञान के प्रति सत्याग्रह ; अहिंसा का व्यवहार ; यौन वासना पर अधिकार ; हरिजनों का उद्धार ; राजसत्ता का मानवीकरण ; शहादत।" गाँधी जी के जीवन-चरित के इन सात रंगों में ही इस काव्य के प्रबंधत्व का रूप निखरा है। प्रबन्धकाव्यों में जीवन की समग्रता और विराटता का चित्रन होता है किन्तु उसकी गरिमा का निवास समग्र विस्तार में नहीं प्रत्युत कुछ मार्मिक स्थलों में ही रहता है। इन्हीं मार्मिक स्थलों की पहचान के लिए पं० रामचन्द शुक्ल ने तुलसीदास की उतनी प्रशंसा की है। बदरी नारायण सिनहा में वह विवेक है जिससे

जीवन की कविता का जीवन के गद्य के फैलाव से छाँटा जाता है। गाँधी जी के जीवन के गद्य से बदरी जी ने उनके जीवन की कविता को छाँट लिया है। यहीं उसका कवि कर्म है। काव्य का प्रत्येक आलोक गाँधी जी के जीवन की एक-एक कविता को उपस्थित करता है। हम सहमत हैं कि "ये उत्कर्ष समुद्र समान गहरे हैं। जितने ही गहन प्रवेश इसके अन्तराल मे करें, उतने ही रत्न प्राप्त होंगे।"

प्रथम आलोक में कवि गाँधी जी की उस मनःस्थिति का चित्रण करता है जब भारत स्वातंत्र्य की देहलीज पर आ खड़ा होता है। गाँधी जी ऐसे मनोविज्ञानिक क्षण में अपने सर पर सत्ता का मुकुट नहीं पहनकर नवीन भारत के निर्माण के द्वंद्व में बेचैन हो जाते हैं। यह उद्विगनता ही इस वेला में गाँधी जी के जीवन की गरिमा है। कवि इस मानसिक संघर्ष को आलोक के आरम्भ में ही उभार देता है—

कौन कुटी में जाग रहा
कर प्राणों की अवहेला
पशु मांदों, खग नीड़ों में
यह है रजनी की बेला ॥१॥

यह कैसी आह–कसक है
रहा जाग जो मानव यह
अमा गहन में तड़प रहा
जब सोता है रे भव यह ॥२॥

यह द्विधा—यह मानसिक संघर्ष ही—प्रथम आलोक की कविता है। सर्ग के अन्त में गाँधी जी इस द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं। कवि पूरीनिर्वैयक्तिक भाषा में कहता है—

हम रोयें या दुलरावें
पर मुकुट नहीं पहनेगा

अपनी हस्ती मस्ती में
जग—जग—अभिमान सजेग ॥५२॥

द्वितीय आलोक में कवि ने सत्याग्रह की उस निष्ठा को पकड़ा है जिसने गाँधी जी के व्यक्तित्व को इतनी गरिमा से मंडित कर दिया है, चम्पारण की भूमि से गाँधी जी को इस देश की उस व्यापक मानवीय पीड़ा का एहसास हुआ था जिसने उन्हें सत्याग्रह की ओर प्रेरित किया। कवि उस पीड़ा को अच्छी तरह भाषा दे सका है—

बहुओं के घूँघट खोलें
बनिता की लज्जा तोड़ें,
मुख बोलें या कुछ बोलें
जड़ दे कोड़ों से फोड़ें ॥१२॥

कोड़ों से फोड़ा जड़ देना—यह भाषाही झकझोर देने वाली है।

तृतीय आलोक में अहिंसा का कवित्व है। अहिंसा ने ही गाँधी जी के व्यक्तित्व को वह शैल्य प्रदान किया जिससे भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि ही नहीं प्रत्युत प्रतीक भी बन गए। इस आलोक का आरम्भ 'चारो ओर तिमिर का घेरा' शीर्षक गीत से होता है जो कदाचित् कविता की दृष्टि से काव्य का सर्वोत्तम अंश है। 'तिमिर के घेरा' की व्यंजना बड़ी अच्छी है। गाँधी जी एक सहिष्णु संस्कृति की कुक्षि से पैदा हुए थे—एक ऐसी सहिष्णु संस्कृति जिसके लिए हत्या और रक्तपात तो साधारण कार्य है। इस बात को व्यक्त करने के लिए कवि ने बड़े ही कवित्वपूर्ण प्रतीक को उठाया है—

विह्वल है निज नीड़ों में खग
अनजाना है जीवन का मग

जीवन का मग ही अनजाना है, फिर भला आदमी किस मार्ग से जायगा ?

चतुर्थ आलोक में शमित-वह्नि पुरुष गाँधी की महिमा देखने लायक है। गाँधी जी ने कस्तूरबा के पत्नी रूप में ही मातृत्व-भाव का गोचर

प्रत्यक्षीकरण किया था। मनुष्य की साधना जिस ऊँचाई तक जा सकती है, उस ऊचाई तक वह गाँधी जी में गई है। पत्नी में मातृत्व के आरोप की भावना ही विराट् और आध्यात्मिक है। कवि लिखता है—

रमणी को परिणति जननी में, व्याख्या नयी इस समय की है।
अगन शामन करलें अब मानव, यह उठी फुहार मलय की है ॥२४॥

साथ ही इस आलोक में कवि ने उस मार्मिक प्रसंग को भी पकड़ा है जब सड़सठ वर्ष के प्रौढ़ महात्मा के स्वप्न में एक रात नारी की कामना प्रबल हो उठती है। गाँधी जी ने हरिजन में स्वयं इसकी चर्चा की थी। लुई फिशर ने अपनी पुस्तक में इस सत्यनिष्ठा की बड़ी प्रशंसा की है।

इस आलोक का विषय वह महान सामाजिक क्रांति भी है जिसे इतिहासकारों ने जन-आंदोलन, हरिजन-उद्धार आदि की संज्ञा दी है। पंचम आलोक में राजसत्ता के मानवीकरण की कथा है। षष्ठ आलोक में कवि ने मुख्य रूप से गाँधी जी की शहादत की पीड़ा को ही बांधा है—

आँसू न उमड़ते यों ही, नयनों से बहकर पानी
न गालों पर खिंच जाती, योंही यह सजल निशानी ॥६॥
कंठ रूंधा है, बाणी है परिणत आंखों के जल में,
आहें आकुल हम सब की, उमड़ीं आँसू अविरल में ॥९॥

एक जगह तो कवि ने इस आलोक में इतनी अच्छी बात कही है जिसकी पूरी प्रशंसा नहीं की जा सकती। वह कहता है—

संध्या की धूमिल वेला, फूलों के पंख कटे हैं।
बढ़ती हुई निशा में, जग जीवित के चिह्न मिटे हैं ॥१४॥

'संध्या की धूलिल वेला' मात्र तथ्य की दृष्टि से कि गाँधी जी की मृत्यु संध्या में ही हुई थी, यही बात नहीं कहती है, बल्कि गाँधी जी की हत्या से इतिहास जिस दिग्भ्रम में पड़ गया था, उसकी भी व्यंजना हो जाती है। फिर फूलों के पंख कटे हैं? तो अनमोल है। कदाचित् किसी दूसरे

कवि ने गांधी जी की शहादत को पीड़ा का इतनी सुकुमार भाषा न दी है। सातवें आलोक में कवि ने गांधी जी के जीवन की चरितार्थता की कविता लिखी है।

कवि ने अपनी सफलता का कोई दावा पेश नहीं किया है। गाँधी जी के व्यक्तित्व की विराटता का उसे बोध है। वह यह मानता है कि गाँधी जी के जीवन के उर्वर-काव्य के कारण ही उसके छन्दों को सुघरता मिली है। कवि ने सर्गों की योजना में बड़ी प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रबंधकाव्यों के पारस्परिक क्रमबद्ध कथा-विकास की रूढ़ि को उसने प्रथक आलोक में ही एल झटके से तोड़ दिया है। यह कवि के आधुनिक भावबोध का परिचायक है; सात आलोक देने में भी एक गरिमा है। सात की संख्या इस देश में बहुत पवित्र मानी जाती है। भू-लोक सात हैं। पुनः पाताल-लोक भी सात हैं। सात समुद्रों की भी चर्चा पुराणों में आई है। गीता में सात सौ श्लोक है। 'रामचरित मानस' में सात सोपान है। बिहारी की सतसई में दोहों की संख्या लगभग सात सौ ही हैं। इसी सात की परम्परा में इस काव्य के साथ आलोक आते हैं। यों, कवि का अभिप्रेत गाँधी जी के जीवन के सात रंगों को दिखाना है। कवि ने गाँधी जी के जीवन के तथ्यों को कहीं नहीं पकड़ा है; निश्चय ही गांधी जी के जीवन की कविता स्थूल तथ्यों में नहीं, सूक्ष्म आयामों में निहित हैं।

रचयिता की श्रद्धा उसकी सफलता को तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। यह श्रद्धा कवि ने शब्द-शब्द में प्रकट की है। छन्द सब जगह जमा नहीं है, कई जगह भाषा हाँफ गई हैं, फिर भी कवि ने गाँधी जी के जीवन के कहाकाव्य को बाँधने में बड़ा श्रम किया है। यह प्रयास ही महान् है। गाँधी जी राजनीति की तुलना में मनुष्यता के नेता थे। इस काव्य को पढ़ने पर यह बात और साफ उभर आती है। गाँधी-विषयक साहित्य का इतिहास जब कभी हमारी भाषा में लिखा जाएगा, निश्चय ही इस कृति की चर्चा के बिना वह अधूरा माना जायगा।

चतुर्थ खण्ड

गद्य और साहित्य चिन्तन

श्री सिनहा के गद्य का मानदंड

श्री नृपेन्द्र नाथ गुप्त, एम०, ए०,

अपनी विशिष्ट भाषा-शैली तथा प्रकृतिगत विशेषताओं के अनेक साहित्यिक प्रयोगों से गुजरते गुजरते श्री सिन्हा के गद्य ने पद्य के समान अपनी स्वतंत्र साहित्यिक सत्ता स्थापित कर ली है। प्रसिद्ध आलोचक जार्ज सेन्टसबरी ने दोनों की तुलना करते हुए विचार किया है—गद्य और पद्य साहित्य के दो स्तर हैं। पद्य का संगीत दिव्यतर स्वरों की अपेक्षा रखता है, किन्तु गद्य का संगीत अपेक्षाकृत अधिक लचीला होता है, उसमें वैविध्य का अवकाश भी अधिक रहता है। इस कथन में थोड़ा बहुत मतभेद की गुंजाइश भी हो सकती है किन्तु यह स्पष्ट है कि रूप की दृष्टि से गद्य उतने ही वैविध्य का दावा कर सकता हैं, जितना पद्य।

श्री सिनहा का गद्य गम्भीर होते हुए भी काव्यात्मक लय लिए हुए है। इनकी 'प्राथमिकी','मैना के उलझ गए डैना' तथा 'झांकियों' में वाक्य-गठन ऐसा हुआ है कि कहीं- कहीं भ्रम होने लगता है कि हम गद्य पढ़ रहे हैं। या पद्य ? सफल गद्य किसे कहा जाय, इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं। कुछ लोगों की दृष्टि में गद्य का वास्तविक सौन्दर्य पद्य होने में है जबकि कतिपय आलोचक गद्य को काव्य से बिल्कुल अलग मानते हैं। निर्विवाद रूप से श्री सिन्हा प्रथम कोटि के गद्य लेखक है और संस्कृत की इस उक्ति 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' पर वे खरे उतरते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि पद्य के मिश्रण से गद्य अधिक सरस और प्रवाहमय बन जाता है। पद्य का आनन्द मूल है जबकि गद्यानन्द पुरोगामी

हैं। मानव-शिशु लोरियों से जितना प्रभावित होता है उतना गद्य और किसी बात से नहीं। तर्क और बुद्धि के उत्तरोत्तर विकास से गद्य की बेल फैली। श्री सिन्हा की मान्यता — "आधुनिक कविता गद्यमयी हो चली है, अधुनिक गद्य भी व्यापकतः कवितामय। किंचित संस्कृत के 'काव्य' शब्द की तरह गद्य और पद्य की सीमाएं मिटकर वाङ्मय अथवा साहित्य की वर्गविहीन मान्यताओं में एक हो जाये? ... ... निबंध आज गद्य का बलिष्ठ अंग है परन्तु कल, बहुत कल निबंध पद्य बद्ध होता था (प्राथमिकी: पृष्ठ २४, २५) इस संदर्भ में विचारणीय है। उनके गद्य में एक साथ बेकन के कवित्व का लक्षण, सर टामस ब्राउन का कल्पना- विस्तार, कार्लाइल की ओजस्वी वाग्मिता, लैम्ब का गद्यप्रगीत देखने की मिलते हैं। महादेवी वर्मा के गद्य में जो भावप्रवन अलंकृत सौन्दर्य है, उसकी स्पष्ट छाप 'मैना के उलझ गए डैना और 'झांकियों' में देखने को मिलती है। अलंकृत सौन्दर्य की जो साहित्यिक छटा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अशोक के फूल, विद्यानिवास मिश्र तथा 'प्रभाकर' आदि के वैयक्तिक निवन्ध में देखने को मिलते हैं, उनकी स्पष्ट झलक हम बदरी बाबू के गद्य में देख सकते हैं।

भाषा बड़ी ही जानदार और सजीव है। लोच इतनी कि, लगता है कि बलखाती खेत को बालियां हो। पांडित्य पूर्ण उद्धरण और विवेचन भी कहीं क्लिष्ट और कठोर नहीं हो पाते। कल्पना भी ऐसी कि समाज के मैल को ढक देते है बल्कि वे अपनी उत्कृष्टता से उस सत्य रूपी मैल को शिवम् और सुन्दरम् में परिणत कर देते हैं। सोद्देश्यता से पूर्ण रहते हुए भी श्रीसिन्हा की भाषा विलियम हैजलिट की तरह सरल है पेटर और वाईल्ड की तरह सुन्दर शब्दों का इंद्रजाल मात्र नहीं। प्राथमिकी का एक ही उद्धरण इस कथन की पुष्टि के लिए यथेष्ट होगा —" कोई भी

साहित्यिक कृति का प्रधान गुण होता है, निष्ठकपटता और उदारता। दुरावछुराव न हन व्यवहार में चाहते, न साहित्य में। ... ... भाषा में आडम्बर और जाल का प्रकटीकरण सच्चाई और निश्चितता के अभाव में ही होता है। (पृष्ठ ४२) जीवित भाषा को तजकर साहित्य चिरंतन नही हो पाता है।

हमारे गद्य को अधिकाधिक सारगर्भित बनाने का श्रेय कथाकारों को है। अज्ञेय का 'शेखरः एक जीवनी, 'मैला अंचल;, 'बलचनमा आदि ने हिन्दी गद्य को परिपुष्ट किया है तो 'मैंना के उलझ गएडैना' और झांकियाँ 'में बिखरे कथाकगों ने पाठकों का विस्तृत समुदाय तैयार किया तथा समाज के झकझोर कर हिला देने हेतु काफी विस्फोटक सामग्रियाँ, अफसर को और क्या चाहिए १ चपरासी, ट्रेजरी, पहली को पे-बिल का भुगतान, सलाम बंदगी, क्वाटर चाहिए, सरकारी जीप मिल जाय तो अच्छा ... ... । .... यही दुनियां है। बहुत खराब, दिन-ब दिन बदतर होती जा रही हैं, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, तंगी करण का जमाना है, स्पष्टीकरण का नहीं "मैना के उलझ डैना। बड़ी से बड़ी बात और तथाकथित सभ्य समाज के आधुनिक रूप पर चुटीले व्यंग छोटे-छोटे वाक्यों में बड़ें मर्म-स्पर्शी और हृदयग्राही बन पड़े है। जो सहृदय गद्य के सौन्दर्य को साहित्य के मर्म तक पहुँचने के मार्ग में अनिवार्य मानते हैं उन्हें उपर्युक्त पंक्तिया स्पर्श करेगी और उनके हृदय स्थल को गुद गुदायेंगी और युग-युग तक अपनी शैली से प्रभावित रखेंगी।

श्री सिनहा ने न केवल साहित्यिक गद्य की रचना की हैं बल्कि जनसाधारण बीच हिन्दी प्रचार के लिए 'यह हिन्दी हिन्दवी है' का भी सृजन किया तो कहीं चलती फिरती चुटीली भाषा के प्रयोग से अपने साहित्य में चार

चांद लगाया है। उनकी इस भाषा-शैली में एक प्रकार की विशेष सजीवता दिखायी पड़ती है। कहीं-कहीं तो अधिकांश उद्गार ही मुहावरो में प्रयुक्त हुए हैं। इन स्थानो पर भाषा खंजन की तरह फुदकती चलती है—'मैना गगन में उड़ान भरनेवाली, नहीं धरती पर फुदकनेवाली, नन्हें, मुन्ने को आसीम, दाना, भविष्य प्रदान करनेवाली, घोंसले को अपनी आभा से चहकसे, रौसन करने वाली, मैना सोचती है यही जीवन है, तिनकों से महल रच देना, जगती के लिए होनहार विरवान को तैयार करना ऐसी धरोहर को सजाना जिससे जन, भू, जीवन सरस हो जाये।

भाषा भाव की संवाहिका होती है। जहां भी लेखक ने चाहा है, अपनी लेखनी से मनोनुकूल भाषा का प्रयोग करवा लिया है। भाषा उनपर सवार होकर नहीं चलती है बल्कि भाषा की बागडोर लेखक के हाथ रहती है। भावावेश में उनकी भाषा और मुखर होती है। झांकिया और बिखरे कथाकणों को जिसने एक बार पढ़ा, अप्रभावित नहीं रहा। श्री सिनहा की अंग्रेजी भाषा सम्बन्धी विद्वता हिन्दी भाषा भाषाशैली के मार्ग में अवरोध नहीं उपस्थित करती बल्कि दुध-मिश्री की तरह घुल मिलकर के उन भाषा की प्रौढता और परिष्कार का परिचय देती है। उन्होंने भाषा के प्रयोग में विराम चिन्ह नहीं लगाया है। बल्कि वह मानते है कि साहित्य की भाषा वह है, जिसमें बोलनेवाले सोचते हैं, सपना देखते है, जिसमें इनके प्रयोग करने वाले इनकी व्यावहारिकता को उतारते है। पंडितों की भाषा की दूरी समाप्त होनी चाहिए। यदि बिल्कुल समाप्त न हो तो कम से कम उनके बीच एक सेतु अवश्य ही बनाई जाय तभी हिन्दी लोक भाषा बनकर अधिक काल तक जीवित रह सकती है।

श्री सिनहा का यह विचार सत्य है कि गद्य लेखक का उद्देश्य पाठकों को आतंकित करना या विद्वता के बोझ से लाद देना नहीं होना चाहिए बल्कि उसे सभ्य और शिष्ट मित्र की तरह विचार-विमर्श करना और परामर्श देना होना चाहिए।

गद्यकार श्री बदरीनारायण सिनहा

—श्री शम्भूनाथ सिंह

अपने प्राथमिकी शीर्षक समीक्षा ग्रन्थ में श्री बदरी नारायण सिनहा ने लिखा है—"अब गद्य की कोई सीमा नहीं। हमारा सारा ज्ञान इसमें भरा है। बुद्धि, विवेक, चिन्तन के प्रतिफल हो नहीं। कल्पना, हृदय के आलोड़न-पीड़न सभी गद्य में बद्ध होते हैं। गद्य विवेक और भावना दोनों से उत्पन्न होता है। उसी प्रकार जिस प्रकार मनुष्य स्पन्दित होता है मस्तिष्क एवं हृदय दोनों की क्रियाओं से। आधुनिक कविता गद्यमयी हो चली है। आधुनिक गद्य भी व्यापकतः कवितामय है। किञ्चित संस्कृत के "काव्य" शब्द की तरह गद्य और पद्य की सीमाएं मिटकर "वाङ्मय" अथवा साहित्य की वर्गहीन मान्यताओं में एक हो जायं। किञ्चित इसे हम स्वर अभिव्यक्ति की संज्ञा देकर अर्धक्षम बना देंगे"।

उपर्युक्त पंक्तियों में साहित्य को एक ऐसे विशद व्यापक एवं सीमाहीन धरातल पर लाने की कल्पना है जो अपने भीतर सर्वथा स्वतंत्र एवं नवीनतम है। कम-से-कम साहित्य को वर्तमान प्रगति को देखते हुए हम आज इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकते कि वर्तमान हिन्दी-साहित्य अपनी विविध रूढ़िगत संकीर्णताओं और अपनी अन्य सीमाओं से ऊपर उठकर एक ऐसे व्यापक वाङ्मय की ओर उन्मुख है जिसकी असीम विस्तृति में उसकी अनेक सीमायें कदाचित अन्तर्हित हो जायं।

यदि उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण आदि कृतियों में हम श्री सिनहा की गद्य शैलियों का अवलोकन करें तो कदाचित् हमारी यह धारणा होगी कि प्रत्येक स्थल पर श्री सिनहा की गद्य-शैली पूर्णतः परिष्कृत, परिमार्जित एवं

प्रांगल है। इसके प्रत्येक स्थल में जिज्ञासा, मीमांसा, अन्वेषण और चिन्तन है। वह न तो संस्कृत के तत्सम एव सामासिक शब्दों के बोझ से बोमिल है और न केवल कल्पना की रंगीनियों से अनुरंजित। वह अधिकांशतः संयत, संतुलित और विचारोत्पादक है। श्री सिनहा की गद्य-शैली हमे हिन्दी के महान समीक्षाकार श्री सुमित्रा नन्दन पंत की इन पंक्तियों की याद दिलाती है कि—

"तुम वहन कर सको जनमन में मेरे विचार।
वाणी तुमको क्या और चाहिए अलंकार॥"

सन् १९४५ में श्री सिनहा का एक "हिन्दी-साहित्य का प्रचार" शीर्षक निबंध उत्तर प्रदेश में प्रमुख साप्ताहिक "आज" में छपा था। यद्यपि विषय बहुत ही साधारण है फिर भी निबंध में लेखक की चिन्तन एवं विवेचन शैली हमें एकबारगी वस्तु की आत्मा की ओर उन्मुख कर देती है। लेखक लिखते हैं—"साहित्य जीवन की अखण्ड धारा की उपेक्षा कर अपनी किन्हीं विभूतियों का निर्माण भले कर ले परन्तु उसका अस्तित्व ननण्य ही रहेगा। जीवन, युग और परिस्थिति की छाप ही हमें उपयोगी और सूक्ष्म बनाती है। मैं जिन तथ्यों का विवेचन साहित्य के अध्ययन द्वारा जनवर्ग को प्रस्तुत करने का पक्षपाती हूं उनका रूप इसी प्रकार के साहित्य में मिल सकता है। कुछ काल तक हमारे कवियों ने कल्पना को प्रधानता देकर जीवन से पलायन किया। किन्तु यह भाव-धारा अधिक टिक नहीं सकी"। इन पंक्तियों में एक ओर भाषा की सुधरता देखते हैं और दूसरी ओर चिन्तन और विवेचन की स्वच्छता लगभग अपनी सभी गद्य-कृतियों में गद्यकार श्री सिनहा का यह संतुलित एवं परिष्कृत रूप हमें देखने को मिलता है।

"गीत और हिन्दी की देन" शीर्षक श्री सिनहा का एक सुन्दर निबंध "आज" में प्रकाशित हुआ था। लेख को पढ़ने पर हमें इस बात का सहज बोध होता है कि लेखक की शैली प्रत्येक स्थल पर परिष्कृत एवं चिन्तनपूर्ण है।

सन् १९४५ में ही "हिन्दी का समृद्धशील साहित्य" शीर्षक एक दूसरा निबंध तथा १९५३ में "गीत और हिन्दी की देन" शीर्षक एक और सुन्दर निबंध

"आज" में ही प्रकाशित हुए थे। जो गद्य की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएं हैं। लेखक की "यह हिन्दी हिन्दवी है" नामक पुस्तिका भी एक उत्तम खोजपूर्ण गद्य-रचना है। हर्ष की बात है कि यह पुस्तिका हिन्दी जगत में पूर्णतः समाहृत हुई है। श्रीयुत् सिनहा ने "प्रतिलिपि गद्य" नामक एक दूसरी पुस्तक लिखी है जिसमें विविध प्रकार से गद्य शैलियों का निग्दर्शन है।

श्रीयुत् सिनहा ने हाल ही में "झांकियां" शीर्षक एक नवीन रचना की है। लेखक की यह नवीन कृति यद्यपि उनके कथा-साहित्य के अन्तर्गत आता है फिर भी इस रचना की अनेक झांकियां अपने वास्तविक रूप में कहानियों के रूप में न आकर अधिकांश रूप से अपने शब्द चित्रों में समाज की सुन्दर रूप-रेखा उपस्थित करती हैं और उत्तम कोटि की गद्य रचनाएं कही जा सकती हैं। हमारा विश्वास है कि श्रीयुत् बदरी नारायण सिनहा एक समीक्षक, एक कथा साहित्यकार अथवा एक कवि के अतिरिक्त एक उच्च कोटि के गद्यकार भी है। और हम आशा करते हैं कि इस दिशा में भी उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी।

—oo—

'हिन्दी-हिन्दवी' के सजग प्रहरी

—लेखक त्रिभुवननाथ सिन्हा
एम० ए० (द्वय)

भारत स्वतंत्र हुआ। उसके सामने कई समस्यायें आयीं, जिनमें राष्ट्रभाषा की समस्या भी एक थी और महत्वपूर्ण। संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहा। सरकार ने वैधानिक रूप से उसे स्वीकार भी किया। परन्तु हिन्दीतर लोग, प्रधानत: कुछ संकीर्ण बंगाली और तमिलनारी इसे उचित मान प्रतिष्ठा नहीं देते तथा हिन्दी 'साम्राज्यवाद' का नारा लगाकर एक विवाद खड़ा करते हैं। यह विवाद कभी-कभी हिंसात्मक रूप भी धारण कर लेता है। इससे राष्ट्रीय एकता को खतरा है। उत्तेजना से इस समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। इस पर गम्भीरता और शांति से विचार किया जाना चाहिये। श्री बदरी नारायण सिनहा की शोधपरक लघु कृति, 'यह हिन्दी हिन्दवी है' इसके पोषक परिप्रेक्ष्य का सबलतम योग है।

यह 'हिन्दी हिन्दवी है' का रूप-आकार व्याख्यान का है, किन्तु ऐसा व्याख्यान नहीं जो रङ्गमञ्च और प्रेक्षक अथवा श्रोताकक्ष में उठकर वहीं विलीन हो जाय। इसे दूर तक गयी पृथ्वी मिली है और विस्तृत आकाश भी। इस प्रकार इसके व्यापक प्रभाव का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। लेखक ने सन्थाल परगने के पथरगामा नगर में अङ्ग प्रान्तरीय साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सर्व प्रथम इसे लिखित रूप में उपस्थित

किया था। मैंने वहां की जनता पर इसके व्यावहारिक, अविच्छिन्न एवं गम्भीर प्रभाव को देखा। हिन्दी के विषय में इस निबन्ध में एक ऐसा राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्थापित किया गया है जिसकी व्यावकता में उसके विरुद्ध विद्रोह की सारी तरंगे समाहित हो जायगीं। हिन्दी जिस प्रतिष्ठित पद पर आसीन है वह राष्ट्रभाषा का पद है—'राष्ट्र की भाषा'। जितना ही व्यापक राष्ट्र होगा, भाषा से भी उतनी ही व्यापकता की अपेक्षा की जायगी; 'यह हिन्दी हिन्दवी है' में हिन्दी का यही व्यापक रूप प्रतिष्ठित किया गया है जो हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाये जाने के समर्थकों एवं विरोधियों दोनों की ही उत्तेजना को शांत करने में समर्थ हो सकता है।

हिन्दी के विरोध में तरह-तरह के तर्क उपस्थित किये जाते हैं। औरों की बात तो छोड़िये, 'आलोचना' के सम्पादक श्रीशिवदान सिंह चौहान जैसे लोग भी हिन्दी के समर्थकों में संकुचित राष्ट्रीयता का आभास पाते हैं। अपने जुलाई अङ्क के सम्पादकीय में उन्होंने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं—"हिन्दी आन्दोलन के नेता अपने संकीर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के कारण यह समझने में असमर्थ हैं कि वे अपने नारों और अपने अमल से देश में विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दे रहें हैं और देश में जनतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के बजाय इसकी जड़ें खोद रहे हैं"। चौहान जी हिन्दी की एक प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक हैं अतः उनसे एक गहरे उत्तरदायित्व की आशा की जानी चाहिये। परन्तु इस स्थान पर वे कुछ दिक्भ्रमित से हो गये हैं। उन्होंने ने तो यहां तक कह दिया है कि भारत में जितनी क्षेत्रीय भाषायें है उतने ही राज्यों का निर्माण होना चाहिये। पता नहीं यदि उनके विचारों को कार्यरूप प्रदान किया जाय तो इससे राष्ट्र की

एकता सुदृढ़ होगी या विघटित होगी। सच तो यह है कि हिन्दी के सम्बन्ध में इस प्रकार के जो विचार हैं उनके लिये सिर्फ चौहानजी को ही दोषी नहीं माना जा सकता। हिन्दी क्या चाहती है और भारत की राष्ट्रीयता में उसका क्या स्थान हैं इसे समझने की आवश्यकता है।

अभी हिन्दी के सम्बन्ध में जिस प्रकार का रचनात्मक दृष्टिकोण श्री बदरी नारायण सिनहा ने स्थापित किया है उससे कितनों के मस्तिष्क का भ्रम दूर हो जायगा। हिन्दी किसी एक जाति विशेष की भाषा नहीं है। सिनहा जी ने अपने इस सारगर्भित निबंध में हिन्दी के विराट स्वरूप का हमें दिग्दर्शन कराया है। लेखक के अनुसार हिन्दी के प्रति सबों का उत्तरदायित्व है। हिन्दी भारत के जनमानस का स्वर हैं। लेखक के ही शब्दों में "यह वह भाषा है जिसका साहित्य परिपूर्ण है नेपाल की सरहद और तराई की मैथिली के विद्यापति से, मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री के प्रारम्भिक गद्य से, वाराणसी के इर्द-गिर्द के तुलसीदास के 'मानस' और 'विनय पत्रिका' से, रमता योगी कबीर जुलाहे की तानों से, मध्यप्रदेश के वृन्दावनलाल वर्मा, से माखनलाल चतुर्वेदी के कतिपय ग्रन्थों से, राजस्थान की दीवानी, प्रेम-विकानी मीरा के भजनों से, गुजरात के नरसिंह के संत-स्वर से, महाराष्ट्र के भूषण की ललकार से और अब दक्खिन भारत के रांगेय राघव के 'घरौंदे' से, बालकृष्ण राव के विवेचन से, मुगल दरबार के रहीम से, जायसी के 'पद्मावत' से, पुरानी हस्तिनापुरी के चन्द बरदाई के 'पृथ्वी-राज रासों' से, खुसरों से, दिल्ली, शहर-सुहाने, के रसखान द्वारा ब्रजविहारी के पूजन से और औरंगजेब की प्रिया के पास भेजी गयी शुद्ध पाती से। सभी क्षेत्रीय बोलियां और भाषायें हिन्दी में अँटी हैं।" मेरे अनुमान में किसी

भी व्यक्ति का विरोध इस विचार से नहीं हो सकता। तब राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के बीच संघर्ष की बात एक मिथ्या परिकल्पना के सिवा और क्या है? हिन्दी में भाषा की विभिन्नतायें इसी प्रकार विलीन हो गयी हैं जिस प्रकार भारत राष्ट्र में अनेक राष्ट्रीय इकाइयों की विभिन्नतायें। भारतीय संस्कृति में 'अनेकता में एकता' का दर्शन है। भारत राष्ट्र भी इसी तरह का है। राष्ट्रीय समन्वय की दिन-रात चर्चा होती थी परन्तु जब सीमा पार से तूफान आया तो भारत 'एकराष्ट्र' बन गया। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी 'अनेकता में एकता' का दर्शन है। यह राष्ट्रीय एकता और भावात्मक समन्वय की सबसे बड़ी कड़ी है। लेखक के ही शब्दों में—"हिन्दी सागर है, महासातार है, इंडियन ओसन, है जिसमें सब मिल जाती है'। दृष्टिकोण में सहिष्णुता की आवश्यकता है फिर कोई विवाद नहीं रहेगा। लेखक ने हिन्दी के इस कल्याणकारी और व्यापक स्वरूप का परिचय देकर भ्रम में पड़े हुये लोगों की उत्तेजना शांत करने में जो स्तुत्य प्रयास किया है वह सराहनीय है।

—०००—

श्री बदरी नारायण सिनहा: एक विचारक तथा प्रचारक

—गोस्वामी मदनगोपाल 'अरविन्द'

(क)

चिंतन साहित्य की आत्मा है। साहित्यकार चाहे कवि हो, कथाकार हो, समीक्षक हो अथवा गद्यकार हो किसी भी स्थिति में चिंतन साहित्यकार की कृतियों के भीतर एक अन्तर्धारा के समान प्रवाहित रहता है। मानवीय चेतना के प्रधानतः दोस्तर होते हैं बौद्धिक और भावात्मक। मानव की बौद्धिक चेतना, उसका ज्ञान और इसकी आत्मा की गहाराई ही उसके भावात्मक एवं कलात्मक चेतना का आधार है। इसीलिए प्रायः ऊंचे दर्जे के साहित्यकारों एवं कलाकारों के भीतर भी हमें चिंतन की गहराई मिलती है। साहित्यकार श्रीयुत बदरी नारायण सिनहा साहित्य के एक ऐसे साधक हैं जिनका हिन्दी भाषा और साहित्य के विविध अंगों पर अधिकार है। श्रीयुत सिनहा की समीक्षा तथा कथा साहित्य के ऊपर पत्र-पत्रिकाओं में भी चर्चाएं होती रही हैं। किंतु इन पंक्तियो के लेखक के विचार में श्री सिनहा अपनी अन्य साहित्यक कृतियों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा और साहित्य के एक स्वस्थ्य विचारक भी, हैं इस तथ्य के ऊपर भी हमें ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि श्री सिनहा के साहित्य के विविध पहलुओं का अध्ययन करने पर ऐसी धारणा होती है कि भाषा और साहित्य के संबंध में श्री सिनहा ने जितना चिंतन किया है उतना हमें इने-गिने साहित्यकारों में देखने को मिलता है। इस दृष्टिकोण से हमारा यह निश्चित मत है कि श्री सिनहा अपनी समीक्षात्मक एवं रचनात्मक कृतियों के अतिरिक्त हिंदी भाषा और साहित्य के एक स्वस्थ एक गंभीर तत्वान्वेषी हैं।

प्राथमिकी को पढ़ने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि समीक्षा के क्षेत्र में लेखक ने घिसी-पिटी लकीरों के ऊपर न चलकर साहित्य के सभी पहलुओं

पर स्वतंत्र चिंतन किया है। हम हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान एवं लेखक श्रीयुत डा० बेचन के इन शब्दों से पूर्णत: सहमत हैं कि "प्राथमिकी की अधिकांश पंक्तियां एक-एक सिद्धान्त वाक्य बनकर आई हैं। खण्ड एक में प्राथमिकी के अन्तर्गत जो स्थापना दी गई वह एक प्रकार से लेखक की समीक्षा का घोषणा-पत्र कहा जा सकता है। इस कथन को एक प्रकार से आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है जिसमें कई मौलिक प्रश्न उठाए गए हैं।" हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में भी हम इसी विचार की पुष्टि पाते हैं। श्रीयुत मिश्र लिखते हैं "विदेशी साहित्य समालोचना ग्रंथों को पढ़कर प्राथमिकी के लेखक ने अपना मत निर्धारण नहीं किया है। उन्होंने सर्वत्र स्वतंत्र चिंतन एवं निष्पक्ष विचार-बुद्धि से काम लिया है। इसमें साहित्य समालोचना के लिए अभिज्ञता, अनुसंधित्सा एवं मौलिक चिंतन अपेक्षित है। प्राथमिकी के लेखक में ये गुण पर्याप्त मात्रा में है। जिनका निदर्शन इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में हुआ है"।

श्री सिनहा के कथा-साहित्य में भी उनके भीतर का स्वस्थ्य विचारक हमें अनेक स्थलों पर दीख पड़ता है। 'मैना के उलझ गए डैना" में उन्होंने जो उपन्यास की सर्वथा एक नई टेकनीक दी है वह भी उनके स्वतंत्र चिंतन का परिणाम है। "मैना के उलझ गए डैना" की जो कहानियां हमारे सामने आती हैं वे कला की दृष्टि से तो उत्कृष्ट हैं ही किंतु साथ ही साथ उन कहानियों को पढ़ने पर अनेक स्थानों पर हमें ऐसी प्रेरणाएँ मिलती हैं जो हमें एक झटके से समाज की विद्रूपताओं, जीवन की मान्यताओं एवं मानव की मूल समस्याओं पर सोचने को बाध्य कर देती हैं। साहित्य के इस तथ्य को ही हम साहित्यकार की सबसे बड़ी सफलता मानते हैं। श्री सिनहा ने इधर "झांकियां" शीर्षक कथा-साहित्य की एक नई रचना की है। इस रचना में हमें समाज की जो झांकियां प्राप्त होती हैं वे हमारी आत्मा को सहसा चिंतनोन्मुख कर देती हैं। यह कथाकृति अभी तक

प्रकाशित नहीं हुई है किन्तु हमारा विश्वास है कि कथा साहित्य के साथ-साथ यह रचना मानव जीवन एवं सामाज का एक ऐसा विषद चित्रण है जो प्रकाशित होने पर निसन्देह रूप में हिन्दी साहित्य में एक अनुपम देन के रूप में हमारे सामने उपस्थित होगी।

यह एक मणिकांचन संयोग है कि श्रीयुत् सिनहा एक समीक्षक, एक कलाकार एवं एक उत्कृष्ट गद्यकार होने के साथ-साथ ही एक ऊँचे दर्जे के कवि भी हैं। हाल ही में उन्होंने स्वर्गीय महात्मा गाँधी के ऊपर एक "सब जन हिताय" शीर्षक महाकाव्य की रचना की है। वो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। इस काव्य का भी हमने अध्ययन किया है जिससे हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हुई है कि श्री सिनहा का कवि काव्य के अन्तर्गत केवल भावात्मक सौंदर्य की अपेक्षा अधिकरूप से चिंतनशील है जिसने गांधी दर्शन को हमारे सामने उत्कृष्ट रूप में व्यक्त किया है। इस काव्य के भीतर गांधी दर्शन की पृष्ठभूमि पर मानव की वर्तमान समस्याओं और समाज के लिए जिन कल्याणकारी भवनाओं का निदर्शन है वह वर्तमान हिन्दी काव्य के भीतर सिन्देह रूपसे श्री सिनहा की एक विशिष्ट देन है। साथ-ही-साथ इसके भीतर हमें एक ऐसी दिशा प्राप्त होती है जिसमें कदाचित आज का कवि मात्र अपने भावलोक के धरातल से ऊपर उठकर भावी मानव के लिए ज्ञान का संचार करे। भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी यद्यपि यह काव्य उत्कृष्ट है तथापि यह एक प्रचण्ड सत्य है कि ज्ञान के काव्य की भावाभिव्यंजना और भी सूक्ष्म और ज्योतिष्मान होती है। वास्तव में जीवन और यथार्थ के सहज सत्य पर पहुंचना ही काव्य में भाव की परिगति है।

हम इस बात की आशा करते हैं कि श्रीयुत बदरीनारायण सिनहा का चिंतनशील साहित्य अपने विविध अंगों में मानव समाज को अधिकाधिक रूप से चिंतनोन्मुख करने में समर्थ हो सकेगा जो आज के समाज और साहित्य के उत्थान और विकास लिए नितांत रूप से आवश्यक है।

(ख)

हिन्दी भाषा के प्रचारक

जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में आज नेताओं की कमी नहीं उसी प्रकार हिन्दी साहित्य में यदि हम ढूंढें तो हमें ढेर के ढेर कवि और कथाकार मिलेंगे किन्तु भाषा की ओर जागरूक होकर उसके उत्थान और विकास की दिशा में काम करने वाले व्यक्ति हमें कम दीख पड़ते हैं। इसका कारण हमें यह प्रतीत होता है कि भाषा के उत्थान का कार्य कला के समान मनोरंजनपूर्ण न होकर एक ऐसा ठोस काम है जिसका मूल राष्ट्र की आत्मा के साथ सन्निहित है। बहुत से लोग ऐसा सोचते हैं कि भाषा के उत्थान की चेष्टा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं समझा जा सकता। वास्तव में किसी भी देश और राष्ट्र की भाषा का प्रश्न समस्त राष्ट्र के उत्थान और विकास का प्रश्न होता है। किसी भी देश की भाषा उसके जनसमूह की संस्कृति के साथ घुली मिली रहती है और संस्कृति राष्ट्र की आत्मा होती है। इसलिए विदेशी शासन काल में जब शासकों की भाषा उस देश की राजभाषा होती है तो धीरे-धीरे उस देश की संस्कृति और आत्मा का ह्रास होता है और वह देश अवनति की ओर अग्रसर होने लगता है। अतः भाषा के परिष्कार और विकास की दिशा में काम करनेवाले साधक को एक ऐसा साधक होना आवश्यक है जिसके भीतर सच्चे अर्थ में राष्ट्रोत्थान की भावनाएँ विद्यमान हों।

प्रस्तुत निबन्ध में हम हिन्दी के साहित्यकार श्रीयुत बदरी नारायण सिनहा की साहित्यिक क्रियाशीलताओं के अन्तर्गत उनके भाषोत्कर्ष एवं उसी प्रचार सम्बन्धी भावनाओं और कृतियों पर विचार करेंगे। हमें यह जानकर आश्चर्य मिश्रित आनन्द होता है कि लगभग आज से बीस वर्ष पहले से ही श्री सिनहा हिन्दी भाषा के निर्माण और प्रचार की दिशा में पूर्णतः जागरूक रहे हैं। सन् १९४५ में श्री सिनहा का "हिन्दी साहित्य का प्रचार" शीर्षक एक निबन्ध वाराणसी के प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक "आज" में छपा था।

उस लेख में उन्होंने लिखा था—"कबीर, सूर, तुलसी की वाणी घर-घर हे फैल गई, पूजा के मंत्र के सदृश ग्राह्य होकर लोकप्रिय बन गई। उस युग में प्रचार के आधुनिक साधन भी नहीं थे। आज हमने जिस साहित्य का निर्माण उनके लिए किया उसका सम्यक् रूप में उनके मध्य प्रचार नहीं हो सका है। इस पर जब मैं विचार किया करता हूँ तो मन में खेद होता है इसलिए कि हमारा जनवर्ग अपने साहित्य से यथेष्ट लाभ नहीं उठा रहा है। मेरा तो दृढ़ विस्वास है कि जीवन से बंधे काव्य एवं कथा साहित्य का प्रचार ग्रामों में हो तथा कृषक वर्ग इसके प्रणयन में दत्तचित्त हों तो जिस अभ्युदय की कामना हम कर रहे हैं उसका प्रादुर्भाव होते देर नहीं लगेगी। साथ ही चेतना एवं क्रांति की लहर ह्रासोन्मुख एवं निराशावादी समुदाय को शक्तिसम्पन्न बनाने में पूरा योग देगी"।

श्री सिनहा का "हिन्दी का समृद्धिशील साहित्व" शीर्षक एक दूसरा लेख सन् १९४५ की मई के "आज" में छपा था इस लेख में श्रीयुत् सिनहा ने लिखा है—"राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्रचार का माध्यम हो इसके दो प्रमुख कारण हैं। पहला यह कि हमें विदेशी भाषा से मुक्ति मिलेगी और दूसरा सबल कारण जो मैं अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूं यह है कि इससे हमारे साहित्य की प्रतिमा समृद्धि होगी। अनेक विषयों की छानवीन होगी और हम अनिवार्यतः इनके रूचिर सृजन में दत्तचित्त होंगे। शिक्षा त्रचार का माध्यम हो जाने से यह होगा कि हमें अपने उत्तरदायित्व का पालन करना होगा। जिन विषयों का सम्यक् रूप में हिन्दी में विवेचन नहीं हो सका है उन्हें विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रेरणा हमारे लेखकों और प्रकाशकों को मिलेगी। इस प्रकार हमारा साहित्य सर्वांगपूर्ण हो सकेगा।" उपर्युक्त अवतरणों में भाषा के निर्माण एवं प्रचार सम्बन्धी लेखक की जो कल्याणकारिणी विचारधारा प्रस्तुत हुई है वह निसंदेह रूप से साहित्यकारों के लिए हृदयंगम करने की वस्तु है।

"प्राथमिकी" के बाद श्री सिनहा ने "माध्यमिकी" और "आज तक की" शीर्षक दो और समीक्षा ग्रंथ लिखे हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित होने

की है। उनके समीक्षा-ग्रंथ "आज तक की" का एक अंश जो हिन्दी भाषा के उत्थान और प्रचार से सम्बन्धित है, अलग एक पुस्तिका के रूप में "यह हिन्दी हिन्दवी है" के नाम से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तिका के अवलोकन से हमें निश्चित रूप से इस बात का ज्ञान होता है कि श्री सिनहा ने हिन्दी भाषा के निर्माण एवं प्रचार के सम्बन्ध में बहुत गंभीर अध्ययन एवं चिंतन किया है। हर्ष का विषय है कि हिन्दी संसार ने इस पुस्तिका का काफी आदर किया है और साथ ही साथ इस दिशा में श्री सिनहा के सम्यक् अन्वेषण एवं अनुसंधान के द्वारा वह काफी लाभान्वित भी हुआ है। लेखक के इस निबंध का निम्नलिखित उद्धरण समस्त देश के लिए पठनीय है। लेखक लिखते हैं "बंगला-मिथिला की मृदुलता, भोजपुरी की मर्दानगी, मगही की पारिवारिकता, अवधी की आत्मीयता, राजस्थानी और बुन्देलखंडी की पौराणिकता और रोंगटे खड़े करनेवाली क्षमता, महाराष्ट्र की रणभेरी और दक्षिण भारत की दृढ़ता सभी हिन्दी में हैं। भारत की जितनी भी सामाजिक, सांस्कृतिक इकाइयां हैं, जितने भी पहनावे ओढ़ावे है, जितनी भी बोलियां हैं, जितने भी स्पन्दन हैं, जितनी भी शक्तियां हैं, जितनी भी खामियां हैं सभी इसमें विद्यमान हैं। हिन्दी सागर है, महासागर है, "इंडियन ओसन" है जिसमें सभी मिल जाती है"। हम हिन्दी के प्रत्येक विद्यार्थी से अनुरोध करेंगे कि वे इस पुस्तिका को अध्ययन करें।

हिन्दी की प्रमुख मासिक पत्रिका "प्राच्य भारती" में हिन्दी साहित्य के वरेण्य विद्वान और साहित्यकार डा० बेचन ने श्री सिनहा के समीक्षा-ग्रंथ "प्राथमिकी" के ऊपर लिखे गए अपने एक लेख में भी हमारा ध्यान इस दिशा की ओर आकर्षित किया है। वे लिखते हैं—"हिन्दी की ज्वलंत समस्याओं से भी श्री सिनहा बेखबर नहीं हैं। उनका मत है कि भाषा का विकास बोलचाल के द्वारा होता है। जिसकी न अवधि है न परिधि। बहस या सरकारी विज्ञप्तियों की चाबुक से भाषा न बन सकी है न बन सकेगी। लिखित भाषा बोलचाल की भाषा की अनुगामिनी होती है और इसके स्रष्टा होते हैं—सच्चे लेखक।"

श्री सिनहा के समीक्षा ग्रंथ "प्राथमिकी" और "आज तक की" को पढ़ने पर हमें यह बोध होता है कि—लेखक भाषा को दुरूह बनाने के पक्ष में नहीं वे भाषा में स्पष्टता, सादगी और सरलता के पक्षपाती हैं। समीक्षा के अतिरिक्त अपने कथा-साहित्य में भी प्रत्येक स्थान पर श्री सिनहा साहित्य के साथ-साथ भाषा का भी निर्माण करते हैं जो उनकी कृतियों में हिन्दी भाषा के उत्कर्ष के दृष्टिकोण से एक अत्यन्य महत्वपूर्ण वस्तु है। श्री सिनहा का "सब जन-हिताय" महाकाव्य में भी हमें अत्यन्त आधुनिक, उत्कृष्ट और सहज बोधगम्य भाषा का प्रयोग पुस्तक के प्रत्येक स्थल में देख पड़ता है। श्री सिनहा के साहित्य का अध्ययन करने पर तथा एक दीर्घकाल से इनकी भाषा सम्बन्धी जागरूकता तथा उसके निर्माण एवं प्रचार सम्बन्धी क्रियाशीलताओं को देखने पर हमें इस बात की जानकारी होती है कि श्री सिनहा हिन्दी भाषा के एक समर्थ उन्नायक के रूप में हमारे सामने आ रहे हैं। हम आशा करते हैं कि हिन्दी संसार श्री सिनहा की इन सेवाओं से भविष्य में अधिकाधिक रूप से लाभान्वित हो सकेगा।

—oo—

पंचम खंड

परिचय जीवनी

श्री बदरी नारायण सिनहा : व्यक्तित्व

—श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा "मुकुर"

अगस्त, १९४४ ई० के मासिक 'बालक' (पटना) में श्री बदरी नारायण सिनहा का सर्वप्रथम लेख प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था—'विद्यार्थी जीवन की साधना'। उनके मित्रों का कथन है कि उनके अनुसार ही उन्होंने—जीवन-साधना की है। वस्तुतः इस अर्थ-तंत्र संचालित युग में भी वे अर्थ-संग्रह से उदासीन रहे हैं। उनकी देव-दुर्लभ त्याग-वृत्ति की जितनी प्रशंसा की जाय, कम होगी। वे अपने पसीने की कमाई की सूखी रोटी ही खाना चाहते हैं। वे कबीर दास की इस नीति के पालक हैं—

"रूखी सूखी खाय के ठंढा पानी पीव।
देख विरानी चूपड़ी मतललचावे जीव॥"

जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल जल में अलिप्त होता है उसी प्रकार पुलिस विभाग में कार्य करते हुए भी वे पुलिस विभाग की अनैतिकता से कोसों दूर रहे हैं। आपादमस्तक जन सेवक हैं। वे जनता का दुख दर्द दूर करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं। वे कार्यों के अम्बार से घबराते नहीं। उनका प्रत्येक कार्य व्यवस्थित ढंग से होता है। वे अपने कार्य-क्रम में तनिक भी व्यति-क्रम नहीं करते। इस अर्थ में वे समय के पावन्द हैं और देश के स्वस्थ नागरिक हैं।

सन् १९५१ ई० में कुमारी इन्दु सहाय, एम० ए० से इनका विवाह हुआ।

वे १९४३ ई० से, जब वे मैट्रिकुलेशन के छात्र थे, हिन्दी की सेवा करते रहे हैं। वे अपने को प्रधान रूप में समालोचक मानते हैं। उनकी समालोचना अक्टूबर १९४४ ई० के साप्ताहिक "आज" (काशी) में प्रकाशित हुई थी जिसका शीर्षक था—'नवीन कवियों की प्रवृत्ति'। तत्कालीन सम्पादक

पराड़कर जी ने इसके लिए उन्हें पारिश्रमिक भी दिया था। उस समय बदरी बाबू की अवस्था चौदह वर्षों की थी। तब से वे साप्ताहिक "आज" (काशी) में बराबर लिखते हे। सन् १९४५ ई० में उन्होंने "बिहार के हिन्दी कवि' 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' नाम [illegible] तक भी लिखी। वे दोनों पुस्तकें अप्रकाशित हैं। उन्होंने चार वर्षों तक अंगरजी साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। नवम्बर, १९४९ ई० से अगस्त १९५२ ई० तक उन्होंने पटना विश्वविद्यालय में अंगरेजी का अध्यापन कार्य किया। इस अवधि के बीच वे एक वर्ष तक बिहार शिक्षा सेवा में रांची गवर्नमेन्ट कालेज में रहे। सन् १९५१ ई० में आप का विवाह हिन्दी की एक प्रतिभा सम्पन्न लेखिका एवं कवियित्री से हुआ। वह समाज-सेवा और सार्वजनिक जीवन में भी उत्साह पूर्वक भाग लेती हैं। १९५१ ई० में श्री सिनहा भारतीय आरक्षी सेवा में सम्मिलित हुए। ए० एस० पी० के रूप में उनकी नियुक्ति पटना-सासाराम में हुई। १९५३ ई० तक आबू (राजस्थान) आरक्षी प्रशिक्षण महाविद्यालय में उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। पुनः उन्होंने कश्मीर और नशीराबाद में भारतीय सेना के साथ प्रशिक्षण प्राप्त किया। पटना सासाराम में वे सन् १९५७ ई० तक रहे। सन् १९५७ ई० में वे आरक्षी अधीक्षक हुए। सन् १९५८ ई० से १९६३ ई० तक वे चम्पारण में रहे। अप्रील, १९६५ ई० तक पटने में आरक्षी अधीक्षक (सी० आई० डी०) और कमाण्डेण्ट मिलिटरी पुलिस रहे। मई १९६५ ई० से वे भागलपुर में एस० पी के पद पर प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार अपने जीवन में उन्होंने विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं और जहां रहे हैं, वहां न केवल प्रशासन के ढांचे को कुशलतापूर्वक नया रूप दिया वरन् जनसेवा साहित्य और संस्कृति के नवीन आलोक भी बिखेर दिए। जब वे अंग्रेजी के प्राध्यापक थे तब अंगरेजी साहित्य के सम्बन्ध में छात्रोपयोगी रचनाएँ लिखते थे और पटना विश्वविद्याल की अंगरेजी परिषद् का भी संचालन करते थे। जब वे पुलिस विभाग में आए तब पुलिस विभाग से सम्बन्धित अनुसन्धानात्मक लेख लिखते थे जो पत्रों में प्रकाशित होते थे। वे जहां भी रहे वहां रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रहे। इसका अर्थ यह है कि वातावरण के अनुसार अपनी चिन्तन प्रणाली और कार्य-पद्धति में

वे अद्भुत रूप से अभिन्न रहे हैं। उससे तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और उसे सफल कर ही छोड़ते हैं। चम्पारन में उन्होंने पुलिस द्वारा आयोजित प्रथम बाल-मेला समारोह में सक्रिय और हार्दिक योग दिया जिससे भूत और काल अपराधों पर नियन्त्रण रखने में पुलिस सक्रिय हुई। वहां उन्होंने अमेरिका के जुवा क्लब के ढांचे पर युवा क्लब और बाल क्लब की अनेक शाखाएं खोलीं जिनके फलस्वरूप देश के अखबारों ने लिखा था—'पुलिस ने नया अध्याय खोला है।' उन्होंने फुलवारी शरीफ मिलिटरी पुलिस (पटना) के प्रयोग में विशाल रंगमंच स्थापित किया जिस पर हिन्दी के नाटक अभिनीत हुए। 'प्राथमिकी' नामक पुस्तक में रंगमंच की समस्या की व्याख्या उन्होंने स्वानुभव के आधार पर की है। जब मद्रास में हिन्दी के विरुद्ध आन्दोलन छिड़ा तब उन्होंने हिन्दी साहित्य की क्षमता की जांच-परख की जिनका परिणाम 'प्राथमिकी' नामक ग्रन्थ है। 'प्राथमिकी' नामक ग्रन्थ में उन्होंने सन् १९४४ ई० से सन् १९५० तक के हिन्दी साहित्य की हलचलों और गतिविधियों का तटस्थ अध्ययन किया है। यह दूसरी पुस्तक है—"मैना के उलझ गए डैना"। यह कहानी है और उपन्यास भी ;इसमें अलग अलग चार कहानियां हैं और समन्वित रूप में उपन्यास का ताना बाना बुनती है।

बदरी बाबू की निम्नलिखित पुस्तकें शीघ्र ही प्रकाशित होंगी—(क) अब बहुसे सबजन हिताय (काव्य) जो महात्मा गांधी के जीवन से सम्बन्धित है। इसकी रचना ११ सितम्बर, १९६५ ई० से ८ अक्टूबर ६५ ई० तक में हुई है। इसमें सात आलोक स्तंभ हैं। प्रथम आलोक में कवि ने साबरमती आश्रम और अगस्त, १९४७ ई० के चित्र अंकित किए हैं, द्वितीय आलोक में चम्पारण में गांधी जी के सत्याग्रह का वर्णन किया है, तृतीय आलोक में अफ्रिका में गांधी जी के सत्याग्रह का वर्णन किया है, चतुर्थ आलोक में भारतवर्ष का, पंचम आलोक में राजसत्ता के प्रति महात्मा गांधी के दृष्टिकोण का, षष्ठ आलोक में महात्मा गांधी की सहादत का और सप्तम आलोक में गांधी जी के महाप्रयाण के बाद देश-विदेश की झांकी का।

(ख) 'माध्यमिकी' में उन्होंने सन् १९५० ई० से १९६० तक के हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन किया है।

(ग) 'आज तक की' में उन्होंने सन् १९६१ ई० से १९६५ ई० तक के हिन्दी साहित्य का विश्लेषण किया है।

(घ) प्रतिनिधि-गद्य में उन्होंने गद्य के विभिन्न पहलुओं की मीमांसा की हैं और उनके दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं।

उन्होंने संस्मरण और शब्द चित्र भी लिखे हैं।

जब मैंने उनसे पूछा—"आपको किन व्यक्तियों ने प्रोत्साहित किया है।" तब वे मुस्कुराकर बोले—"साहित्य की ओर अग्रसर करने में मैं अपने स्वर्गीय भ्राता श्री इन्द्रवंश नारायण सिनहा का आभारी हूँ और साहित्य के प्रति अभिरुचि प्रगाढ़ करने में धर्म पत्नी श्रीमती इन्दु सिन्हा का, जो हिन्दी में एम० ए० हैं और कविता तथा निबन्ध भी लिखती हैं।

श्री बदरी नारायण सिनहा भारतीय संस्कृति की विशाल संभावनाओं के जागरूक अन्वेषी हैं और निर्भीक विचारक हैं। इनके परिवार में साहित्य के प्रति विशेष रुचि हैं। इनके भ्राता हैं—श्री देववंश नरायण बरियार, श्री चन्द्रशंश नारायण सिनहा, श्री सच्चिदानन्द सिनहा, जो हिन्दी के कवि एवं कथाकार हैं और आई० ए० एस० हैं और श्री अरुण कुमार सिनहा जो अंगरेजी के प्राध्यापक हैं और हिन्दी के लेखक भी। इनके पुत्र श्री आनन्दवर्द्धन सिनहा ने अभी से साहित्यकी रचना शुरू कर दी है। साथ ही भ्रातृ-पुत्र श्री अशोक कुमार सिनहा, जो अंगरेजी के प्राध्यापक हैं और श्री सतीश कुमार सिनहा, जो अंगरेजी के विद्यार्थी हैं सभी साहित्य-साधक हैं। इनके भ्राता श्री झाड़खण्डी प्रसाद सिनहा भी साहित्य के प्रचार और प्रसार में दत्तचित रहते हैं। आश्चर्य नहीं कि हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति इनकी आस्था इतनी दृढ़ है।

इनके जीवन पर इनके पिता स्वर्गीय श्री बम बहादुर लाल वर्मा और श्वसुर स्वर्गीय डाक्टर श्री गणपत सहाय के जीवन-यापन एवम् आदर्श का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है।

श्रीमती इन्दु सिनहा

पटना विश्वविद्यालय से एम० ए० तथा दो वर्षों तक रांची विश्व विद्यालय के अन्तर्गत महिला महाविद्यालय की विभागाध्यक्षा। अब एक कुशल गृहिणी। फिलहाल महिला सुनाम गोष्ठी की योजना कर नारी वर्ग में भारतीय आदर्शों को अविरल निनादित कर रही हैं।

कला, विशेषतः काव्य संगीत और संस्कृति, के प्रति तन्मय, चम्पारण में इन्होंने आरक्षी परिवार कल्याण-केन्द्र की स्थापना कर तत्कालीन चीन युद्ध के समय जन-जागरण कार्य किया।

समाज सेविका, कवियत्री, लेखिका।

तीव्र बुद्धि की एक मेधाविनी महिला। भारतीय संस्कृति की पुजारिणी। मधुर भाषिणी किन्तु प्रखर, ओजस्वनी और तेजस्विनी।

—सम्पादक

प्रस्तुत आलोचना-पुस्तक सन् १९४४ से १९६४ तक के हिंदी साहित्य को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पुरातन और अधुनातन आलोचना के बीच की कड़ी की दृष्टि से भी यह समीक्षाकृति पठनीय है। लेखक ने मुख्य कृतियों और कृतिकारों का समालोचन बड़े मौलिक ढंग से किया है और उसकी दृष्टि कहीं भी दुराग्रहपूर्ण नहीं है। उसका विवेक कहीं भी खंडित नहीं हुआ है। उसकी प्रतिभा असंदिग्ध है, इसलिए भविष्य में उससे लम्बी चौड़ी आशाएँ करना संगत है।

—श्री बालकृष्ण राव

लेखक ने घिसी-पिटी लीक पर चलने की कोशिश नहीं की है। इस सुविचारित और सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

—श्री सच्चिदानन्द अवधिया

'प्राथमिकी' में लेखक के मात्र सामान्य विचार ही नहीं हैं बल्कि उसमें अध्ययन, चिंतन और मनन के बाद जो सात्विक प्रतिक्रियायें होती हैं उन्हें देखकर यह भी स्पष्ट होता है कि काव्य साहित्य की नवीनतम भाव दिशाओं से और उनकी गतिविधि से उनका घनिष्ठ संबंध है।

—श्री सतीश चन्द्र मिश्र

'इण्डियन पुलिस सर्विस' में जुड़े रहकर भी लेखक हिंदी के प्रति जागरूक ढंग से सोचता-पढ़ता रहा है और १९४४ से १९६४ तक जो कुछ भी महत्वपूर्ण गुजरा है उसे उसने जैसे देखा-जिया है, उसे अपनी ओर से बिना किसी प्रकार के चश्मे के इस पुस्तक में रखने की कोशिश की है। पुस्तक पाठक के समक्ष इस काल को एक हद तक सामने रखने में सफल है।

—धर्मयुग

प्रकाशक : पुस्तक बिक्री सर्विस, लोअर बजीब लेंड (मुंशी राजराय) रोड, भागलपुर-१